द्वितीय अध्याय

दलित आन्दोलन और ओमप्रकाश वाल्मीकि

साहित्य में सामाजिक मूल्यों का सादृश्य चित्रण होता है और समाज की प्रत्येक गतिविधि साहित्य से अनुप्राणित रहती है। समाज में घटित होने वाली छोटी-छोटी घटनाएँ साहित्य को प्रभावित और प्रेरित करती हैं। 'दलित आन्दोलन' एक ऐसी ही घटना है जिसने भारतीय समाज के ढांचा को ही हिला दिया। इसके तहत दलितों ने समाज में व्याप्त अत्याचारों और असमानताओं के खिलाफ आन्दोलन शुरू किया। दलित आन्दोलन से न केवल भारतीय सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थिति ही प्रभावित हुई बल्कि इसके साथ-साथ साहित्य भी प्रभावित हुआ। इसका साक्षात् प्रमाण ओमप्रकाश वाल्मीकि का साहित्य है। ओमप्रकाश वाल्मीकि एक साहित्यकार होने के साथ-साथ एक सशक्त दलित आन्दोलनकारी भी थे। उनका साहित्य जहाँ दलित आन्दोलन से प्रभावित है तो वहीं उनका साहित्य, दलित आन्दोलन के लिए खाद-पानी का काम भी करता है। इस तरह से देखें तो दलित आन्दोलन और ओमप्रकाश वाल्मीकि का संबंध काफी गहरा है। वस्तुतः 'दलित आन्दोलन और ओमप्रकाश वाल्मीकि' पर चर्चा करने से पहले 'दलित' शब्द का अर्थ, 'दलित साहित्य' की अवधारणा आदि को जान लेना अति आवश्यक है।

2.1 'दलित' का शाब्दिक अर्थ और अवधारणा

'दलित' शब्द संस्कृत के 'दल' धातु से बना है। 'दल' का अर्थ "काटना, टुकड़े करना, चूर्ण करना"[1] आदि है। दलित शब्द का अर्थ विभिन्न कोशों में इस प्रकार दिए गए हैं –

"दलित - 1. मोड़ा हुआ। मसला हुआ। मर्दित।

2. रौंदा हुआ। कुचला हुआ।

3. खंडित। टुकड़े-टुकड़े किया हुआ।

4. विनष्ट किया हुआ।

5. जो दबा कर रखा गया है। दबाया हुआ। जैसे - भारत की दलित जातियां भी अब उठ रही है। "[2]

ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुसार –"दलित शब्द का अर्थ है-जिसका दलन और दमन हुआ है, दबाया गया है, उत्पीड़ित, शोषित, सताया हुआ, गिराया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ, कुचला हुआ, विनिष्ट, मर्दित, पस्त-हिम्मत, हतोत्साहित, वंचित आदि।"[3] डॉ. श्यौराज सिंह

'बेचैन' ने 'दलित' शब्द को इस अर्थ में लिया हैं –"दलित वह है जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है।''[4] तो वहीं डॉ. कुसुमलता मेघवाल 'दलित' शब्द को परिभाषित करते हुए लिखती हैं –"दलित का शाब्दिक अर्थ है कुचला हुआ। अतः दलित वर्ग का सामाजिक संदर्भों में अर्थ होगा, वह जाति समुदाय, जो अन्यायपूर्वक सवर्णों या उच्च जातियों द्वारा दमित किया गया हो, रौंदा गया हो। दलित शब्द व्यापक रूप में पीड़ित के अर्थ में आता है, पर 'दलित वर्ग का प्रयोग, हिंदू समाज व्यवस्था के अंतर्गत, परम्परागत रूप में शूद्र माने जाने वाले वर्णों के लिए रूढ़ हो गया है। दलित वर्ग में वे सभी जातियाँ सम्मिलित हैं, जो जातिगत सोपान क्रम में निम्न स्तर पर रही हैं और जिन्हें सदियों से दबाकर रखा गया है।''[5] कँवल भारती के अनुसार –"दलित वह है जिसपर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है। जिसे कठोर और गंदे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया है। जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया गया और जिस पर सछूतों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की, वही और वही दलित है, और इसके अंतर्गत वही जातियाँ आती हैं, जिन्हें अनुसूचित जातियाँ कहा जाता है।''[6] डॉ. मैनेजर पाण्डेय दलित शब्द का अर्थ समझाते हुए कहते हैं –"जब मैं दलित शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ तो मेरे ध्यान में वे हैं जिन्हें भारतीय वर्ण-व्यवस्था में शूद्र कहा जाता है या जिन्हें समाज में अछूत माना जाता है।''[7] मोहनदास नैमिशराय ने 'दलित' शब्द को विस्तृत रूप में परिभाषित किया हैं। वे कहते हैं -"दलित शब्द मार्क्स प्रणीत सर्वहारा शब्द के लिए समानार्थी लगता है। लेकिन इन दोनों शब्दों में पर्याप्त भेद है। दलित की व्याप्ति अधिक है, तो सर्वहारा के सीमित। दलित के अंतर्गत सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक शोषण का अन्तर्भाव होता है, तो सर्वहारा केवल आर्थिक शोषण तक ही सीमित है। प्रत्येक दलित सर्वहारा वर्ग के अंतर्गत आ सकता है, लेकिन प्रत्येक सर्वहारा को दलित कहने के लिए बाध्य नहीं हो सकते... अर्थात् सर्वहारा की सीमाओं में आर्थिक विषमता का शिकार वर्ग आता है, जबकि दलित विशेष तौर पर सामाजिक विषमता का शिकार होता है।''[8] डॉ. एन. सिंह के अनुसार –"हमारे विचार में दलित शब्द का अर्थ है जिसका दलन या उत्पीड़न किया गया हो। यह उत्पीड़न चाहे शास्त्र के द्वारा हो अथवा शस्त्र के द्वारा।''[9] डॉ. सुभाष चंद्र के अनुसार –"दलित एक ऐसा विशिष्ट वर्ग है, जो शोषण की अन्य संरचनाओं को झेलते हुए अमानवीय छुआछूत का शिकार भी रहा है और अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष करता रहा है।''[10] 'दलित पैंथर' के घोषणा पत्र के अनुसार –"दलित अर्थात् अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के सदस्य, नवबौद्ध, मजदूर लोग, भूमिहीन तथा गरीब कृषक, महिलाएँ तथा वे सभी लोग जिन्हें धर्म के नाम पर एवं राजनैतिक तथा आर्थिक तौर पर शोषित किया जा रहा है।"[11]

इस तरह 'दलित' शब्द अपने साथ व्यापक अर्थ को लेकर चला है। दलित शब्द जाति सूचक नहीं एक समूह सूचक शब्द है। यह दलन, शोषण, अत्याचार का सूचितार्थ है। दलित अर्थात् ऐसा वर्ग जिसका शोषण आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक सभी कोणों से हुआ हो। जिसे सदियों से दबाया-कुचला गया हो। जिसने अस्पृश्यता के दंश को झेला है। समाज में जिसे अभिव्यक्ति का मौका नहीं दिया गया। जिन्हें सदियों से हमारे समाज में हाशिए पर रखा गया और जिसे भारतीय संविधान में 'अनुसूचित जाति' कहा गया है। वही दलित है।

'दलित' शब्द जब साहित्य के साथ जुड़ता है तो साहित्य में एक नई साहित्यिक प्रवृत्ति का जन्म होता है, जो अनुभूति के एक नवीन विश्व को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। ऐसी प्रवृत्ति जो समाज में नई व्यवस्था लाने को आतुर है। जिसे हिंदी साहित्य में 'दलित साहित्य' के नाम से जाना जाता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुसार -"साहित्य के साथ दलित शब्द के जुड़ते ही उसकी व्यापकता और अधिक क्रांतिबोधक हो जाती है। अर्थ और अधिक व्यंजनात्मक होकर साहित्य की भूमिका और सामाजिक उत्तरदायित्वों को और अधिक विश्लेषित करने की क्षमता हासिल कर लेती है। दलित शब्द विरोध की अभिव्यक्ति का प्रतीक बन जाता है। मानवीय संवेदनाओं के सरोकारों से जुड़कर सामाजिक प्रतिबद्धता स्थापित करता है।''[12] दलित साहित्य वास्तव में नये साहित्य का सर्जक है। यह समकालीन साहित्य की एक धारा है। दलित साहित्य मूलतः दलितों के दुःख-दर्द, सम्मान-अपमान, शोषण-अत्याचार आदि की साहित्यिक अभिव्यक्ति है।

2.2 दलित साहित्य की परिभाषा

विभिन्न विद्वानों ने दलित साहित्य को अलग-अलग तरीके से व्याख्यायित किया है। दलित साहित्य के मुख्य पैरोकार ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित साहित्य को परिभाषित करते हुए कहते हैं –"दलित साहित्य जन साहित्य है यानी 'मास लिटरेचर' (Mass literature) सिर्फ इतना ही नहीं 'लिटरेचर ऑफ एक्शन' (Literature of Action), भी है जो मानवीय मूल्यों की भूमिका पर सामंती मानसिकता के विरुद्ध आक्रोशजनित संघर्ष है। इसी संघर्ष और विद्रोह से उपजा है दलित साहित्य।''[13] डॉ. कँवल भारती के अनुसार –"दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है, अपने जीवन-संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला नहीं, बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है। इसलिए कहना न होगा कि वास्तव में दलित द्वारा लिखा साहित्य ही दलित साहित्य की कोटि में आता है।''[14] प्रो. चमनलाल का मानना हैं –"दलित साहित्य वह साहित्य है जो दलितों के जीवन, उसके सुख-दुख, उनकी सामाजिक-

राजनीतिक स्थितियों, उनकी संस्कृति, उनकी आस्थाओं-अनास्थाओं, उनके शोषण व उत्पीड़न तथा इस उत्पीड़न-शोषण के दलितों द्वारा प्रतिरोध की परिस्थितियों को व्यापकता तथा गहराई के साथ कलात्मकता से प्रस्तुत करता है।''[15] मराठी दलित कवि नारायण सूर्वे का कहना है कि – "'दलित साहित्य' संज्ञा मूलतः प्रश्न सूचक है। महार, चमार, माँग, कसाई, भंगी जैसी जातियों की स्थितियों के प्रश्नों पर विचार तथा रचनाओं द्वारा उसे प्रस्तुत करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है।''[16]

डॉ. धर्मवीर के अनुसार –"दलित साहित्य वह है जिसे दलित लेखक लिखता है। वह श्रेष्ठ और कम श्रेष्ठ हो सकता है लेकिन शर्त यह है कि गैर-दलित कैसा भी दलित-साहित्य नहीं लिख सकता।''[17] डॉ. एन. सिह के अनुसार –"दलित का अर्थ है, जिसका दलन, शोषण और उत्पीड़न किया गया हो, सामाजिक, आर्थिक और मानसिक धरातल पर। सम्पूर्ण दलित साहित्य ऐसे ही उत्पीड़ित और शोषित लोगों की बेहतरी के लिए दलित लेखकों द्वारा लिखा गया साहित्य है।''[18] मोहनदास नैमिशराय के अनुसार –"दलित साहित्य यानी बहुजन समाज के सभी मानवीय अधिकारों और मूल्यों की प्राप्ति के उद्देश्यों से लिखा गया साहित्य है जो संघर्ष से उपजा है, जिसमें समता और बंधुता का भाव है और वर्ण-व्यवस्था से उपजे जातिभेद का विरोध है।''[19] श्री प्रेमकुमार मणि के अनुसार –"दलितों के लिए दलितों द्वारा लिखा जा रहा साहित्य दलित साहित्य है, वह विलास का साहित्य नहीं आवश्यकता का साहित्य है। सम्पूर्ण विज्ञान उसकी दृष्टि है और पीड़ित मानवता का उद्धार उसका इष्ट है। दलित साहित्य वह प्रकाशपुंज है, जो अँधेरे में उतरा है।''[20] डॉ. प्रेमशंकर के अनुसार –"दलित साहित्य दलितों का, दलितों द्वारा, दलितों की भाषा में लिखा गया जीवंत साहित्य है जो अपने सच्चे अनुभवों से सोए हुए साथियों को जगाकर उसकी गरिमा, गौरव, अस्मिता, आत्माभिमान तथा अस्तित्व के प्रति विश्वास करने का साहित्य है।''[21] डॉ. सी.बी. भारती के अनुसार "नव युग का एक व्यापक वैज्ञानिक व यथार्थपरक संवेदनशील साहित्यिक हस्तक्षेप है। जो कुछ भी तर्कसंगत, वैज्ञानिक, परम्पराओं का पूर्वाग्रहों से मुक्त साहित्य सृजन है हम उसे दलित साहित्य के नाम से संज्ञायित करते हैं।''[22] डॉ. सोहनपाल 'सुमनाक्षर' के अनुसार –"दलित साहित्य दलितोत्थान हेतु लिखा गया, यह एक ऐसा साहित्य है जो भोगे हुए सच पर आधारित है। जमीन से जुड़े दलित, शोषित, उपेक्षित, सर्वहारा वर्ग से संबंधित है जो दशा और दिशा को इंगित करता है और जिसमें विद्रोह और उद्बोधन के साथ संवेदना जागृत करने की ऊर्जा है।''[23]

दलित साहित्य की इन समस्त परिभाषाओं के मूल में सामाजिक परिवर्तन का स्वर सुनाई देता है। यह सामाजिक परिवर्तन अम्बेडकरवादी विचारधारा से आता है क्योंकि दलित साहित्य का प्रेरणा स्रोत डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर का मानवतावादी स्वर है। यह सदियों से दमित, शोषित, उपेक्षित

और प्रताड़ित जन की संवेदनाओं का साहित्यिक प्रस्तुतीकरण है। यह सदियों से संतप्त लोगों के आक्रोश, विद्रोह एवं मुक्ति का साहित्य है, जिसके मूल में समता, स्वतंत्रता और बंधुता का भाव है। दलित साहित्य किसी एक व्यक्ति की वेदना से उठा हुआ साहित्य नहीं है। पूरे समाज की वेदना का सामूहिक रूप इसमें देखने को मिलता है। अतः दलित साहित्य आवश्यकता का साहित्य है जिसके मूल में मानव-उद्धार की भावना है।

2.3 दलित साहित्य: स्त्रोत

हिंदी दलित साहित्य पर बात करते समय यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि हिंदी दलित साहित्य अपने लिए खाद-पानी कहाँ से पाता है या यूँ कहें कि हिंदी दलित साहित्य का प्रेरणा स्त्रोत क्या है? वैसे दलित साहित्य पर यह आरोप लगाया जाता है कि यह 'मराठी साहित्य का अनुकरण है' या 'मराठी दलित साहित्य की कलम है' आदि-आदि। लेकिन गहरे अध्ययन से पता चलता है कि हिंदी दलित साहित्य न तो मराठी साहित्य का अनुकरण है और न ही मराठी दलित साहित्य की कलम। हिंदी दलित साहित्य मराठी दलित साहित्य से प्रभावित और प्रेरित है लेकिन उनका अनुकरण नहीं। सिर्फ हिंदी दलित साहित्य ही नहीं पंजाबी दलित साहित्य, बंगला दलित साहित्य, उर्दू दलित साहित्य, कन्नड़ दलित साहित्य आदि सभी मराठी दलित साहित्य से प्रभावित और प्रेरित है न कि अनुकृत। इस तरह से देखें तो हिंदी दलित साहित्य न केवल मराठी दलित साहित्य से प्रेरित और प्रभावित है बल्कि इसके साथ-साथ यह बौद्ध साहित्य, सिद्ध-नाथ साहित्य, सन्त साहित्य, अम्बेडकरवाद आदि से प्रभावित और प्रेरित है।

2.3.1 बौद्ध साहित्य

बौद्ध साहित्य समानता पर आधारित साहित्य है। बौद्ध साहित्य मनुष्य की मुक्ति में विश्वास रखता है। यह जाति, धर्म, वर्ण आदि से मनुष्य को सर्वोपरि मानता है। इसलिए गौतम बुद्ध ने तत्कालीन आर्य-संस्कृति का विरोध किया जो मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद पैदा करती है। उन्होंने ब्राह्मणवादी वर्चस्व के विरुद्ध विद्रोह किया क्योंकि ब्राह्मणवादी व्यवस्था मनुष्य के एक समूह को दस्यू से दास और फिर अस्पृश्य बनाने को प्रेरित करती है। बुद्धकालीन व्यवस्था पर रामधारी सिंह दिनकर अपनी पुस्तक 'संस्कृत के चार अध्याय' में लिखते हैं –"बुद्ध के समय में ही भारत में संस्कृति की दो धाराएँ बहुत स्पष्ट रही हैं। एक धारा वह है जो वर्णाश्रम धर्म को अक्षुण्ण रखना चाहती है जिसका विश्वास वेदांतों, पुराणों, स्मृतियों और धर्मशास्त्रों में है और धर्म की स्मृति रूपों में श्रद्धा रखती है ; मंदिर, मूर्ति, तीर्थ और व्रत में विश्वास करती है। इस धारा के आचार्य मनु, शंकर तथा उनके कवि कालिदास, जयदेव,

विद्यापति और तुलसीदास हैं। दूसरी धारा वह है जो बुद्ध के कमंडल से निकलकर बौद्ध आचार्यों से होकर सरहपा, नाहपा आदि सिद्धों में पहुंची और उनके कवि कबीर, नानक और दादू हैं।''[24]

बौद्ध साहित्य इसी ब्राह्मण धर्म की कुरीतियों के विरुद्ध उत्पन्न साहित्य है। बौद्ध साहित्य ने ब्राह्मण धर्म में उपस्थित बाह्याडम्बरों का विरोध किया। 'मूर्ति पूजा' के स्थान पर 'लोक पूजा' को महत्त्व दिया। उन्होंने वेदांतों, पुराणों, मनुस्मृति को नकारा और 'लोक धर्म' का प्रचार-प्रसार किया। इतिहासकार रोमिला थापर कहतीं हैं –"भारत में जन्में किसी भी अन्य ऐतिहासिक व्यक्ति ने विश्व का बलात् इतना अधिक ध्यान आकृष्ट नहीं किया, जितना बुद्ध ने किया है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि बुद्ध ने अपने समाज के तेजी से बदलते समाज का विश्लेषण करने का अत्यंत गहन और व्यापक प्रयास किया था। बौद्ध धर्म ने एक वैकल्पिक समाज का भी खाका खड़ा कर दिया था। उसने उस समय अपनी जड़ जमाती श्रेणीबद्ध असमानतावादी विचारधारा और व्यवहारों से भिन्न सिद्धान्तों पर आधारित समाज को संगठित करने की संभावना खड़ी कर दी थी।''[25]

सही अर्थों में गौतम बुद्ध एक आन्दोलनकारी थे। उनका उद्देश्य समाज में परिवर्तन लाना था। उन्होंने आम जनता को 'अप्प दीपो भव' का मत्र दिया जिसका अर्थ होता है 'अपना दीपक स्वयं बनो'। बाद में जाकर इसी मंत्र को डॉ. अंबेडकर ने भी अपनाया। गौतम बुद्ध ने अपने अनुयायियों से कहा कि "आनन्द यह मैं कह रहा हूँ, इसलिए इस पर विश्वास मत करना, तर्क की कसौटी पर कसना, और जब खरा उतरे, तब मानना।''[26] गौतम बुद्ध तर्क को महत्त्व देते थे। इसीलिए गौतम बुद्ध के धर्म को एक वैज्ञानिक धर्म माना जाता है। बौद्ध साहित्य समानता के साथ-साथ विचार-स्वतंत्रता पर भी बल देता है। हिंदू धर्म-ग्रंथों में विचारों की स्वतंत्रता पर पाबंदी है। जो भी व्यक्ति हिंदू धर्म और हिंदू समाज व्यवस्था में रहेगा, उस हर व्यक्ति को अपने विचार-स्वातंन्त्र्य की तिलांजली देनी होगी। इस तरह से बौद्धों ने हिंदू धर्म की पराधीनता का खंडन किया। बाद में ये सारी बातें दलित साहित्य का प्रेरणा स्त्रोत बनीं। इसलिए दलित साहित्यकारों ने बौद्ध धर्म को स्वीकारा और उनसे प्रेरणा भी ली। दलित आलोचक डॉ. प्रेमशंकर ने गौतम बुद्ध के विद्रोह के स्वर को दिखाते हुए लिखा है –"जाति व्यवस्था के विरोध में संघर्ष सामाजिक एवं संस्कृति के साथ-साथ साधनात्मक स्वरूप भी लेने लगा। भगवान गौतम बुद्ध एवं भगवान महावीर ने शूद्रों एवं दासों के प्रति मानवीय गरिमा के द्वार सबलतापूर्वक खोल दिये थे। धम्मपद ने ब्राह्मण वर्गों की जन्मगत उच्चता पर प्रश्नचिह्न लगा दिया था। इसका परिणाम यह हुआ कि सम्राट अशोक ने ब्राह्मण को भी न्याय के समक्ष अन्य वर्गों के साथ समान रूप से प्रस्तुत कर दिया, परन्तु बौद्ध धर्म की महायान शाखा ने जाति व्यवस्था पर

कठोरतापूर्वक चोट किया। चर्यापदों की प्रतीकात्मक शैली इसका प्रमाण है कि सर्वप्रथम दलित और निम्न जातियों को अभिव्यक्ति का सुअवसर इसी समय मिला।''[27]

2.3.2 सिद्ध-नाथ साहित्य

सिद्ध-नाथ बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। अतः खंडन-मंडन की प्रवृत्ति उन्हें बौद्धों से प्राप्त हुआ था। नाथों की संख्या चैरासी बताई जाती हैं,जिनमें से अधिक शूद्र थे। नाथ सम्प्रदाय के आचार्य सरहपा थे, जिन्हें राहुल सांकृत्तयायन हिंदी साहित्य के प्रथम कवि मानते हैं। उनकी पुस्तक 'दोहाकोश' में वर्ण-व्यवस्था, जातिप्रथा का पुरजोर विरोध दिखता है। वे जातिवाद, ब्राह्मणवाद का खंडन करते हुए लिखते हैं -

"ब्राह्मण न जानते भेद, यों ही पढ़े ये चारों वेद।

मट्टी पानी कुश लेई पठन्त, घर बैठे अग्नि होमन्त।।

एक दण्डी त्रिदण्डी भगवा भेसे, ज्ञानी होके हंस उपदेसे।

मित्थे ही जग वह भूले, धर्म, अधर्म जानज तुत्थे।।

वर्ण अचार प्रमाण रहित, अच्छर भेद।

अनन्त को पूजई घरे भंजई, जऊ न लागे लेप।।''[28]

जिसका अर्थ है – "ब्राह्मण अविवेकी होते हैं, भेद नहीं जानते। व्यर्थ ही चारों वेद पढ़े हैं और घर में बैठकर आग में हवन करते हैं। हवन अकारज होती है। कडुए धुएं से आंखें जलती हैं। वे भगवा वेष धरे एक दण्डी, त्रिदण्डी ज्ञानी बनकर उपदेश देते हैं। उन्हें तो धर्म-अधर्म का फर्क ही नहीं मालूम।''[29]

सिर्फ सरहपा ही नहीं सभी शूद्रों ने अपनी-अपनी वाणी में जाति-व्यवस्था, वर्ण-व्यवस्था और वर्चस्ववादी परम्परा का खुलकर विरोधा किया है। डॉ. प्रेमशंकर लिखते हैं –"नाथ सिद्ध कवियों में कई शूद्र नाथ सिद्ध थे। इन्होंने जाति व्यवस्था, ब्राह्मणवादी संस्कृति और साहित्य के विरोध में सशक्त अभिव्यक्ति के द्वारा अपने संघर्ष को जीवन्त रखा है।''[30]

2.3.3 संत साहित्य

मध्यकाल ऐतिहासिक दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण है। यह परिवर्तन का काल रहा है। साहित्यिक दृष्टि से यह काल वैविध्य पूर्ण रहा है। इस काल में एक साथ दो तरह की प्रवृत्तिगत साहित्यिक रचनाएं थीं। सगुण और निर्गुण धारा दोनों एक साथ चल रही थीं। सगुण धारा के माध्यम से जहाँ कृष्ण एवं राम का गुणगान हो रहा था, वहीं इसके विपरीत निर्गुण काव्यधारा में बाह्याडम्बर, पूजा-पाठ, जाति व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था आदि का खंडन किया जा रहा था। दलित साहित्य का संबंध इसी निर्गुण धारा से है। जिसे संत काव्यधारा कहा जाता है। संतों ने मूर्ति पूजा, तीर्थाटन, वेद, उपनिषद, मनुस्मृति का विरोध किया। कबीर, नानक, रैदास, चैतन्य, गोरक्ष, चोखा, महालिंग आदि संत थे, जिन्होंने अपनी वाणी के माध्यम से जातिवाद, वर्ण-व्यवस्था, बाह्याडम्बर का कड़ा विरोध किया। दलित साहित्य का संत साहित्य से गहरा संबंध है। दलित साहित्य पर संत साहित्य के प्रभाव को दिखाते हुए दलित आलोचक माताप्रसाद लिखते हैं -"संतों के विचारों से दलित जाति को प्रेरणा मिली, उनमें आत्मविश्वास जाग्रत हुआ।"[31] बात यहाँ स्पष्ट है कि संतों के विचारों से दलितों को प्रेरणा मिली। दलितों में विद्रोह करने की प्रवृत्ति संतों से आयी है।

कबीर के समय का समाज ब्राह्मणवादी और वैदिक कर्मकांड व्यवस्था से युक्त समाज था। ब्राह्मणवाद अपनी पूरी शक्ति के साथ निम्न वर्ग पर शोषण और अत्याचार कर रहा था। समाज में अत्याचार की कोई सीमा नहीं थी। ऐसे समय में कबीर ने इन दीन-दुखियों की आवाज को उठाया और ब्राह्मणवादी व्यवस्था का विरोध किया। उन्होंने लाचार जनता के समक्ष निर्गुण धर्म का विकल्प रखा। निर्गुण धर्म ने सदियों से दमित, शोषित और उपेक्षित वर्ग के भीतर सम्मान का भाव पैदा किया। कबीर मूल रूप से समाज सुधारक थे। वे मूल रूप से समाज में मानवता की स्थापना करना चाहते थे। कबीर कहते थे -

"एक बूँद एकै मलमूतर, एक चाक इक गूदा।

एक जाति से सब उतपता, कौन ब्राह्मण कौन सूदा।

एक पवन एक ही पानी, एक जाति संसार।

एक ही खाक घड़े सब भाँड़ एक ही सिरजन हारा।"[32]

कबीर के बाद संत काव्य-धारा के दूसरे महत्त्वपूर्ण संत दादू हैं। उनका योगदान हिंदी संत काव्य-धारा में कबीर से कम नहीं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी अपनी पुस्तक 'हिंदी साहित्य के

इतिहास' में दादू का परिचय देते हुए कहते हैं –"यद्यपि सिद्धांत की दृष्टि से दादू कबीर के मार्ग के ही अनुयायी हैं, पर उन्होंने अपना एक अलग पंथ चलाया, जो 'दादूपंथ' के नाम से प्रसिद हुआ। दादूपंथी लोग इनका जन्म संवत् 1601 में गुजरात के अहमदाबाद नामक स्थान में मानते हैं। इनकी जाति के संबंध में भी मतभेद हैं। कुछ लोग गुजराती ब्राह्मण मानते हैं और कुछ लोग इन्हें मोची या धुनिया मानते हैं। कबीर साहब की उत्पत्ति कथा से मिलती-जुलती दादूदयाल की उत्पत्ति कथा भी दादूपंथी लोग कहते हैं। उनके अनुसार दादू बच्चे के रूप में साबरमती नदी में बहते हुए लादीराम नामक एक नागर ब्राह्मण को मिले थे। चाहे जो हो, अधिकतर ये नीची जाति के ही माने जाते हैं।''[33] संत दादू दयाल ने भी एकता, समान्ता पर बल दिया। उन्होंने भी जाति-पांत का खंडन किया। बकौल दादू -

"अपनी-अपनी जाति सौं, सबको वैसे पाँति।

दादू सेवग राम का, ताकै नहीं भरांति।।

चोर अन्यायी मसकरा, सब मिलि वैसे पाँति।

दादू सेवग राम का, तिनि सौं करैं भरांति।।''[34]

यद्यपि कबीर और दादू का उद्देश्य एक ही है -समाज में फैली छुआछूत की बिमारी को जड़ से उखाड़ फेंकना और एक बेहतर समाज की स्थापना करना। लेकिन कबीर की वाणी में जो कड़वाहट है, वह दादू की वाणी में कम है। दादू प्रेम में विश्वास रखने वाले संत हैं। वे कोई भी बात प्रेमपूर्वक कहते हैं। रामचंद्र शुक्ल जी कहते हैं –"दादू की वाणी में यद्यपि उक्तियों का वह चमत्कार नहीं है जो कबीर की बानी में मिलती है, पर प्रेम भाव का निरूपण अधिक सरल और गंभीर है। कबीर के समान खंडन और वाद-विवाद में इन्हें रुचि नहीं थी।''[35]

इस तरह, यही परम्परा बाद में जाकर दलित लेखकों ने अपनायी। दलितों ने संतों से प्रेरणा ली। संत साहित्य दलितों के लिए ऊर्जा का स्त्रोत रहा है। दलितों ने भी जाति, वर्ण व्यवस्था, वेद आदि का कड़ा विरोध किया। प्रो. चमनलाल तो कबीर और रैदास को दलित साहित्य का अग्रदूत तक बना देते हैं। बकौल प्रो. चमनलाल –"आधुनिक दलित साहित्य ने भी अपनी पहचान समाज के विकृत जातिगत ढ़ाँचे के प्रति अपना आक्रोश जताकर की है। इस संदर्भ में आधुनिक दलित साहित्य की जड़ें कबीर और रविदास की वाणी में देखी जा सकती हैं। इसलिए इस तथ्य को यहाँ रेखांकित किया जा सकता है कि सही मायनों में कबीर और रविदास हिंदी दलित साहित्य के अग्रदूत हैं। उत्तर भारत के

दलित साहित्य का आरम्भ कबीर और रैदास से माना जाना चाहिए और वहीं से दलित साहित्य का ऐतिहासिक अध्ययन किया जाना चाहिए।''[36]

दलित सहित्य का अग्रदूत कबीर और रविदास को मानने वाली बात नहीं पचती है। यह सच है कि हिंदी दलित साहित्य संतों से प्रेरित और प्रभावित है लेकिन वही उसका अग्रदूत है ऐसा नहीं कहा जा सकता। संत साहित्य समाज में उदारवादी दृष्टि अपनाते है। वे समाज में सुधार लाना चाहते है, बदलाव नहीं। लेकिन दलित साहित्य एक आन्दोलन के रूप में आया है। आन्दोलन बदलाव की मांग करता है। दलित वर्ग समाज में बदलाव चाहता है। दलित रचनाकार सदियों से चली आ रही सामाजिक व्यवस्था में बदलाव चाहते हैं। संतों ने जो रास्ता अपनाया उससे उस समय की स्थिति में कुछ परिवर्तन तो आया लेकिन उसका दूरदर्शी परिणाम कुछ नहीं हुआ। या यूँ कहें कि संतों के पास दूरदर्शीता का अभाव था जिसके कारण वे सफल नहीं हो पाये। इस संदर्भ में मराठी दलित लेखक बाबूलाल बागलू लिखते हैं -"युद्धकाल में जन्मा संत साहित्य पूर्णरूपेण वर्ण-व्यवस्था द्वारा स्थापित वैचारिकता और साहित्यिक आदर्शों में बंधकर रह गया है। संस्कृत साहित्य द्वारा स्थापित संकल्पन, सिद्धांत व नायक और शोषण, दमन के तत्त्वों को संत साहित्य ने ज्यों-का-त्यों स्वीकार किया और अभिव्यक्त किया। शोषण-व्यवस्था, वर्ण-व्यवस्था इससे और अधिक मजबूत हुई। जाति-व्यवस्था और उससे उपजी मानसीकता को इस्लाम ने भी स्वीकार कर लिया था। संतों की भक्ति समाज में समता भाव स्थापित करने में असमर्थ रही है। उनके द्वारा की गई व्याख्याएँ आदर्श रूप बनकर समाज में अपना प्रभाव नहीं जमा पाई, भक्ति मार्ग सर्वत्र फैला, लेकिन भक्तिगणों का समूह जाति व्यवस्था में ही फँसा रहा। कर्मवाद, पुनर्जन्मवाद, आत्मवाद, देववाद आदि मान्यताएँ और अधिक गहराती गई। जिससे यथास्थितिवाद को बढ़ावा मिला। 'जो भी होता है, ईश्वर के मर्जी से होता है' की भावना ज्यों-का-त्यों बना रहा। हिंदू सामंतवाद की वैचारिक और सामाजिक व्यवस्था भारतीय समाज में जैसी थी वैसी ही बनी रही।''[37]

रैदास के भी चिंतन का केन्द्र बिंदु दलित वर्ग ही है जैसे कबीर और दादू के थे। उन्होंने ब्राह्मणवादी सत्ता का कड़ा विरोध किया। कबीर की ही भांति उन्होंने अन्याय के खिलाफ आवाज उठाई। कबीर और रैदास के संबंध के बारे में डॉ. धर्मवीर कहते हैं –"कबीर रैदास के छोटे भाई थे। वे रैदास को बहुत प्रिय थे। कबीर ने रैदास का पूरा सम्मान किया है। यह एक समय में दो भाइयों की महान जोड़ी थी, जो संसार ने अब तक देखी है। ये दलितों के गुरु और सदगुरु हैं। इनमें कोई कमी नहीं है।''[38] डॉ. धर्मवीर ने कबीर और रैदास दोनों को दलितों के गुरु तक कह दिया है।

कबीर और रैदास दोनों के चिंतन के केन्द्र में शूद्र, उपेक्षित वर्ग था। दोनों का स्वप्न एक ही था - भेद-भाव रहित समाज और मानवता की स्थापना। दोनों ने इसके लिए काफी कोशिश भी किया। इसलिए इन दोनों के मिश्रण के समय को पुनर्जागरण युग की संज्ञा दिया गया है। डॉ. तेजसिंह कहते हैं –"कबीर दलित पुनर्जागरण के पहले बड़े कवि हैं तो रैदास दूसरे बड़े कवि हैं। बाकी सभी संत दलित कवि भी दलित पुनर्जागरण के ही कवि हैं जो सगुण-चिंतन परम्परा के समानांतर निर्गुण-दलित चिंतन परम्परा को आगे बढ़ाते हैं। बुद्ध के समय का जन-जागरण सही अर्थों में दलितों का जागरण है जो तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों की देन है। बुद्ध के विचारों ने ही सबसे पहले दलितों को प्रभावित किया, जिससे वर्ण-व्यवस्था की कठोर सामाजिक सत्ता से दलितों को कुछ राहत मिली।''[39]

इस तरह यह जाति विरोधी धारा का प्रवाह धीरे-धीरे आगे बढ़ता गया और आगे जाकर इसने एक बाढ़ का रूप लिया, जिसे हिंदी साहित्य में दलित साहित्य के नाम से जाना गया। दलित साहित्यकारों ने इन्हीं सतों से ही प्रेरणा लेकर ब्राह्मणवादी संस्कृति के विरुद्ध आवाज बुलंद किया जिसका परिणाम आज हमारे सामने है।

2.3.4 डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा

यदि भारतीय दलित साहित्य पर सबसे अधिक और गहरा किसी व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ा है, तो वह हैं डॉ. भीमराव अम्बेडकर। डॉ. गंगाधर पानतावडे दलित साहित्य के प्रेरणा स्त्रोत पर चर्चा करते हुए कहते हैं –"हमारे दलित साहित्य की प्रेरणा ना मार्क्सवाद है ना हिंदुवाद है, ना निग्रो साहित्य है। दलित साहित्य की प्रेरणा केवल अम्बेडकरवाद है।''[40]

डॉ. भीमराव अंबेडकर दलित वर्ग के लिए 'डुबते हुए को तिनके का सहारा' के रूप में आये हैं। उन्होंने अंधेरे में भटके हुए को आशा की रोशनी दिखाई। उन्होंने दलित समाज में शिक्षा के महत्त्व को उजागर किया। वर्षों से शोषित, दमित और उपेक्षित वर्ग के अंदर चेतना जगाई। डॉ. अंबेडकर ने दलितों के लिए 'शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो' का नारा लगाया। डॉ. अम्बेडकर दलितों के पथ-प्रदर्शक बने। दलित साहित्य की चर्चित लेखिका सुशीला टाकभौरे अपनी कविता में कहती हैं –"दलित अछूत ढूंढ़ रहे थे/पीड़ाओं से मुक्ति का मार्ग/अंधेरे में आशा का प्रकाश/जिससे विश्वास कर सकें/दुनिया उनकी भी जीने का हक है/दलितों के मसीह बाबा साहेब ने/राह दिखाई है/विद्रोह आन्दोलन और क्रान्ति से/पा सके है अपना अधिकार/मुक्ति का मार्ग।''[41]

डॉ. भीमराव अंबेडकर वास्तव में मसीहा के रूप में दलितों के जीवन में आये थे। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन दलितोद्धार में लगा दिया। डॉ. अंबेडकर स्वयं भी एक दलित थे और उन्हें भी

एक दलित होने का परिणाम भुगतना पड़ा था। उनके बचपन के बारे में डब्लू. एन. कुबेर लिखते हैं – "छुआछूत का प्रहार कितना भीषण होता है, इसका अहसास अंबेडकर को छात्र जीवन में ही हो गया था। एक गाड़ीवान ने उन्हें और उनके भाई को अपने साथ गाड़ी में नहीं बैठने दिया था। अंबेडकर और उनका भाई मसूर रेलवे स्टेशन से गोरेगाँव जा रहे थे। उन्होंने एक गाड़ी भाड़े पर तय की। अभी गाड़ी कुछ ही दूर चली थी कि गाड़ीवान को यह पता चला कि ये लड़के किस जाति के हैं। उसने जाने से इनकार कर दिया। इन दोनों बच्चों ने गाड़ीवान को दोगनी किराया दिया। भीमराव के बड़े भाई ने गाड़ी हाँकी और गाड़ीवान गाड़ी के पीछे-पीछे पैदल चला कि कहीं छूत का भूत न चड़ जाय। पूरे रास्ते उन्हें पीने के पानी तक नहीं मिला। डॉ. अम्बेडकर को तब पता चला कि वे ऐसी अभागी जाति में पैदा हुए हैं, जिसे छुना पाप है।''[42]

डॉ. भीमराव अंबेडकर ने समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व का संदेश समाज को दिया। वे दलितों का उद्धार केवल आर्थिक दृष्टि से नहीं बल्कि सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र से भी चाहते थे। वे दलितों की स्थिति में परिवर्तन के लिए सामाजिक और राजनीतिक बदलाव पर जोर देते हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक 'Annihilation of caste' में लिखा है -"Turn in any direction you like, caste is the monster that cresses our path. you cannot have political reform, you cannot have economic reform unless you kill this monster''[43] "किसी भी दिशा में मुड़ें, जाति का राक्षस रास्ता रोके खड़ा मिलेगा। इस राक्षस को मारे बगैर न तो कोई राजनीतिक सुधार संभव है न आर्थिक।''[44]

डॉ. भीमराव अंबेडकर ब्राह्मणवादी मानसिकता से भली-भांति परिचित थे। इसलिए उन्होंने दलित वर्ग में एकता के लिए जोर दिया। दलित समाज को संगठित होने का मंत्र दिया। डॉ. अंबेडकर जानते थे कि बिना एकता के वर्ण-व्यवस्था हिंदु समाज के राक्षस रूपी मानसिकता से लड़ना सम्भव नहीं है। उन्होंने दलितों को धर्म परिवर्तन पर जोर दिया। उन्होंने स्वयं भी बौद्ध धर्म ग्रहण किया। उन्होंने अपनी पुस्तक 'बुद्ध एंड हिज़ धम्म' में बुद्ध धर्म का विस्तार से वर्णन किया है। दलित आलोचक डॉ. धर्मवीर कहते हैं –"भारत में दलित समाज ने डॉ. अम्बेडकर के रूप में विश्व को बीसवीं शताब्दी का अपना महान पुरुष दिया है। इस शताब्दी में यदि कोई धर्मग्रंथ रचा गया है, तो बाबा साहब द्वारा ही रचा गया है। इसका नाम 'द बुद्ध एंड हिज़ धम्म' है। इस ग्रंथ की लेखन शैली उन्होंने स्वयं खोजी थी।''[45]

स्वयं डॉ. अंबेडकर बौद्ध धर्म के बारे में कहते हैं –"दुख निवारण के लिए बौद्ध धर्म का मार्ग ही सुरक्षित मार्ग है। बौद्ध धर्म पूर्णतः भारतीय है और गौतम बुद्ध न केवल भारत के उद्धारक थे, बल्कि सम्पूर्ण मानवता के उन्नायक थे।"[46]

इस तरह से डॉ. अंबेडकर के साहित्य को दलित द्वारा, दलितों के लिए, दलितों का साहित्य कह सकते है। डॉ. अंबेडकर का संपूर्ण साहित्य दलितों के लिय प्रेरणा स्त्रोत रहा है। इतना ही नहीं उन्होंने 'जनता' और 'मूकनायक' जैसी पत्रिकाओं का संपादन भी किया, जो उस समय दलित बुद्धिजीवी वर्गों की अभिव्यक्ति का एक महत्त्वपूर्ण एवं सशक्त माध्यम साबित हुआ। इन पत्रिकाओं के माध्यम से बड़े-बड़े दलित लेखक और आलोचक पैदा हुए। इसलिए इस पत्रिका का दलित साहित्य में अलग ही स्थान है।

2.3.5 मराठी दलित साहित्य

मराठी साहित्य में दलित साहित्य का उद्भव कब से हुआ यह अभी तक सठीक रूप से कोई नहीं बता पाया है। इसकी जड़ कोई बुद्धकाल में तलाशता हैं तो कोई भक्ति साहित्य में और कोई महात्मा ज्योतिराव फुले के सामाजिक चिंतन में। लेकिन इतना तय है कि मराठी दलित आन्दोलन की मूल प्रेरणा स्त्रोत डॉ. अंबेडकर की विचारधारा, उनकी जीवन दृष्टि और उनके द्वारा चलाया गया दलित आन्दोलन रहा है। प्रसिद्ध मराठी दलित आलोचक और लेखक विमल थोरात महाराष्ट्र में दलित साहित्य की शुरूआत के विषय में कहते हैं –"महाराष्ट्र में भक्ति आन्दोलन की शुरूआत 13वीं सदी में होती है। उस काल में दो संप्रदायों का प्रारम्भ होता है। एक महानुभाव संप्रदाय और दूसरा चारकरी संप्रदाय। इसी चारकरी संप्रदाय में विभिन्न जातियों के संतों ने भक्ति और भक्तिपरक रचनाओं से पद्दलित जनता में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया था। इन संतों में चोखा मेला (महार), संतगोरा (कुम्हार), सेना (नाई), सावत (माली), जनाबाई (दासी) जैसे संतों ने भक्ति का आनन्द केवल मंदिर कलश के दर्शन करके ही लिया। इसलिए चोखा मेला की वाणी में अस्पृश्यता की वेदना सर्वत्र दिखाई देती है, लेकिन उनके पुत्र कर्ममेला के स्वर में विद्रोह भी है।"[47] इन्हीं संतों की वेदना और विद्रोह ने आगे चलकर मराठी साहित्य में एक नयी प्रवृत्ति वाले साहित्य को जन्म दिया जिसे मराठी दलित साहित्य का नाम दिया गया।

सन् 1927 ई. से लेकर सन् 1930 ई. के बीच डॉ. अंबेडकर ने महाराष्ट्र में ऐसे बहुत से आन्दोलन किये जैसे – 'जलस्त्रोतों पर दलितों का समान अधिकार आन्दोलन', 'मंदिर प्रवेश आन्दोलन', मनुस्मृति का दहन आदि का प्रभाव वहां के दलितों में दिखने लगा था। उसी समय

महाराष्ट्र में ऐसे वर्ग भी थे जो इन सारी घटनाओं को साहित्यिक रूप दे रहे थे। धीरे-धीरे इस प्रवृत्ति में विस्तार होने लगा। इन बुद्धिजीवी वर्गों ने अपनी कविताओं के माध्यम से समाज में फैली असमानताओं का विरोध करना शुरू कर दिया। इस वर्ग में किसन फागु वन सोडे, शहिर हेगड़े, वामनराव कर्डक, दीनबंधु शेगाँवकर, ना. रा. शेंडे, मधु कोसारे आदि के नाम लिए जा सकते हैं। आगे जाकर इसी परम्परा को नामदेव ढसाल, दया पवार, अर्जुन डांगले, वामन निंबालकर आदि ने आगे बढ़ाया और अभी वर्तमान समय में यशवंत मनोहर, शरणकुमार लिंबाले, जयप्रकाश कर्दम, कंवल भारती आदि सक्रिय हैं।

मराठी दलित साहित्य में सबसे पहले आत्मकथा बहुत मात्रा में लिखी गई। इनमें दया पवार की 'बलूत' (अछूत), माधव कोड विलकर की 'मुक्काम पोस्ट देवाचें गोठवे' (अन्त्यज), शंकर राव खरात की 'तराल अंतराल', लक्ष्मणमाने की 'अपरा' (पराया), शरणकुमार लिंबाले की 'अक्करमाशी' आदि प्रमुख हैं।

मराठी साहित्य में दलित साहित्य के फलने और फूलने में विभिन्न दलित पत्र-पत्रिकाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। ये पत्रिकाएँ हैं - 'अस्मितादर्श', 'आम्ही', 'विद्रोह' आदि।

इस तरह से मराठी साहित्य में दलित साहित्य का विस्तार हुआ जिसका प्रभाव अन्य भारतीय साहित्य पर भी पड़ा। जिसकी प्रेरणा से अन्य साहित्य के साहित्यकारों ने भी दलित साहित्य पर अपनी कलम चलाई। इस तरह से दलित साहित्य का विस्तार होता गया।

2.4 दलित आन्दोलन का इतिहास

व्यक्ति, समुदाय और समाज सबका अपना-अपना इतिहास होता है। जो आज है वही कल इतिहास कहलाता है। दलित आन्दोलन का इतिहास काफी संघर्षपूर्ण रहा है। संघर्ष और जद्दोजेहद दलित आन्दोलन का मुख्य गुण है। इसी जद्दोजेहद स्वभाव के कारण ही आज दलित साहित्य एक विस्तृत वृक्ष अपनी शीतलता लिए हुए है। इस वृक्ष में शीतलता तो है ही, साथ ही साथ एक आग भी है जो समाज की व्यवस्था को बदलने की हिमाकत रखती है। दलित आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य समाज में समरसता का बीज बोना और मानवता की स्थापना करना है। दलितों की लड़ाई सवर्णों से नहीं बल्कि समाज की व्यवस्था से है। दलित आन्दोलन का उद्देश्य बताते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं – "हमारी लड़ाई सिर्फ भूख की लड़ाई नहीं है। न सिर्फ सत्ता पा जाने की लड़ाई है। हमारी लड़ाई उससे कई आगे जाती है। जहाँ मानव निर्मित व्यवस्थाएँ बनाई गई हैं, जिसने जाति, सम्प्रदाय, भाषावाद, लिंगभेद, रंगभेद पैदा किया हैं, उसके विरुद्ध है। विषमता के खिलाफ यह जंग सामाजिक क्रान्ति की

जंग है। जो समता, बंधुता की स्थापना के लिए कटिबद्ध है।''[48] दलित आन्दोलन अस्मिता के लिए लड़ा गया एक युद्ध है। इसका उद्देश्य समाज में समरसता और मानवीयता की स्थापना करना है।

भारतीय दलित आन्दोलन को गहराई से अध्ययन के लिए इसे तीन भागों में बांटा जा सकता है -

1.डॉ. अंबेडकर पूर्व दलित आन्दोलन

2.डॉ. अंबेडकर और दलित आन्दोलन

3.डॉ. अंबेडकर उत्तर दलित आन्दोलन

2.4.1 डॉ. अंबेडकर पूर्व दलित आन्दोलन

जब कहीं भी दलित आन्दोलन की बात होती है तो उसे सीधा-सीधा डॉ. अंबेडकर के संघर्ष के साथ जोड़कर देखा जाता है, जो एक गलत अवधारणा है क्योंकि डॉ. अंबेडकर के पहले भी अनेक दलित नेताओं ने दलितों के अधिकारों के लिए भारत के विभिन्न क्षेत्रों में संघर्ष किया था। सबसे पहले महाराष्ट्र में किशन फागू बनसोडे, गोपाल बाबा बालंकर, वी. रवि मजपंडित, कालीचरण नन्दागवली, शिवराम जनता कांबले आदि नेताओं ने दलित आंदोलन को आगे बढ़ाया। दक्षिण भारत में दलित आन्दोलन को प्रचार और प्रसार करने में भाग्य रेड्डी वर्मा, एम. सी. राजा, मुर्गेश पिल्ले, अयन्कल्ली आदि का बहुत बड़ा हाथ है। उसी समय उत्तर भारत में दलित आन्दोलन का कमान संभालने वालों में से स्वामी अछूतानंद, पंजाब में बसंत पाई, ढक्करचंद, स्वामी शूद्रानंद एवं मंगूराम थे। दलित आन्दोलन के प्रथम चरण का आन्दोलन 1920 तक आते-आते प्रायः समाप्त हो गया। प्रथम चरण में स्वामी अछूतानंद द्वारा चलाया गया 'आदि हिंदू' आन्दोलन खूब चला।

2.4.1.1 महात्मा ज्योतिबा फुले और दलित आन्दोलन

27 फरवरी सन् 1827 ई. को महाराष्ट्र के दलित परिवार में ज्योतिबा फुले का जन्म हुआ। उनका पूरा नाम ज्योतिराव गोविंदराव फुले था। वे एक विचारक, समाजसेवी, लेखक, दार्शनिक तथा क्रांतिकारी थे। अपने क्रान्तिकारी स्वभाव के कारण उन्होंने दक्षिण भारत में भारी क्रांतिकारी परिवर्तन लाए। उन्होंने जाति आधारित समाज का जमकर खंडन किया। महात्मा फुले ने मनुवादी व्यवस्था को चुनौती देते हुए कहा "मैं ज्योतिबा प्रतिज्ञा करता हूँ, मनुवादी ब्राह्मणों को मैं चैन से नहीं सोने दूंगा। मैं दलित-शोषित समाज को सवर्णों के गुलामी से मुक्ति दिलाऊँगा। दलितों को शिक्षा का अधिकार मिलेगा। वे

पढ़ेंगे और एकजुट होकर सवर्णों के अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष करेंगे। दलित मुक्ति के लिए मैं अपना पूरा जीवन लगा दूँगा।''[49] ज्योतिबा फुले दलित समाज के प्रति प्रतिबद्ध थे। उन्होंने दलितों के समानता के लिए जीवन पर्यन्त संघर्ष किया।

ज्योतिबा फुले ने दलितों और महिलाओं के उत्थान के लिए अनेक कार्य किया। उन्होंने स्त्रियों को शिक्षा के साथ जोड़ा। स्त्री शिक्षा की मुहीम उन्होंने अपने ही घर से शुरू किया। महात्मा ने सबसे पहले अपनी पत्नी सावित्री देवी को ही पढ़ाया। उन्होंने पत्नी से कहा कि 'मैं तुम्हें इस लिए शिक्षा दे रहा हूँ, ताकि तुम अन्य स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार करो।' इस तरह से बाद में दोनों ने मिलकर स्त्री शिक्षा को बढ़ावा दिया। दोनो ने मिलकर सबसे पहले पूना के 'बुधवार पेठ' नामक ब्राह्मण बस्ती में बालिका विद्यालय खोला, जहाँ बहुत सारे दलित स्त्रियां पढ़ने लगीं।

सन् 1865 ई. में ज्योतिबा फुले की पुस्तक 'गुलामगीरि' प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में फुले ने सदियों से पीड़ित, शोषित की आपबीती और उनकी गुलामगिरी का सजीव चित्रण किया। उन्होंने दलितों के शोषण का कारण भारतीय समाज-व्यवस्था को बताया। अतः उन्होंने दलितों को मनुवादी व्यवस्था का जोरदार विरोध करने का आहवान किया। उनकी इस पुस्तक पर टिप्पणी करते हुए मैनेजर पांडेय लिखते हैं –"गुलाम की यातना को जो सहता है वही जानता है, और जो जानता है वही पूरा सच कह सकता है। सचमुच राख ही जानती है जलने का अनुभव और कोई नहीं।''[50]

24 सितम्बर, सन् 1873 को ज्योतिबा फुले ने 'सत्यसोधक समाज' की स्थापना की। ज्योतिबा फुले ने हमेशा अपने कामों से दलित समाज को प्रेरित किया। उन्होंने हमेशा से दलितों को आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहन किया। दलितों के उद्धार के साथ-साथ उन्होंने सबसे महत्त्वपूर्ण काम नारी उत्थान का किया। उन्होंने स्त्रियियों को पुरुषों के समान अधिकार दिलाया। इस तरह से देखें तो दलित आंदोलन में उनका योगदान अतुल्यनीय है।

2.4.1.2 स्वामी अछूतानन्द और 'आदि-हिन्दू' आन्दोलन

स्वामी अछूतानन्द को उत्तर भारत में दलित आन्दोलन का अग्रदूत माना जाता है। उनकी समय सीमा डॉ. अम्बेडकर से थोड़ा आगे का है। उत्तर भारत में सबसे पहले स्वामी जी ने जाति-प्रथा पर प्रहार किया। अछूतानन्द ने दलितों के अंदर चेतना जगाई और उन्हें अपने अस्तित्व को लेकर जागरूक किया। उन्होंने अछूतों को हिंदुओं से अलग बताया और 'आदि-हिंदू' आन्दोलन चलाया। उन्होंने 'आदि हिंदू' संज्ञा से दलितों को एक नई पहचान दी। 'आदि हिंद' आन्दोलन का केन्द्र उत्तर प्रदेश था जो स्वयं स्वामी जी का जन्मस्थल है। डॉ. विवेक कुमार अपने आलेख 'दलित समुदाय और

सामाजिक परिवर्तन' में कहते हैं –"साक्षर दलितों के बीच 1920 के आसपास 'आदि हिंदू आन्दोलन को जन्म दिया। स्वामी अछूतानन्द (1879-1933) एवं राम चरण (1888-1938) इस आन्दोलन के प्रभावशाली नेता थे। अचम्भे की बात यह है कि ये सभी नेता आर्य समाज द्वारा चलाए जा रहे आन्दोलन को छोड़कर अपना पृथक् आन्दोलन को चलाने के लिए प्रेरित हुए। उनका मत था कि दलित समुदाय की उन्नति एवं प्रगति हिंदु समाज के अंदर रहकर नहीं की जा सकती, इसलिए उन्हें 'आदि-हिंदू' के साथ-साथ भक्ति धर्म के अंदर अपना स्थान ढूंढ़ना होगा।"[51] इस आन्दोलन ने दलित समाज में सशक्त प्रभाव डाला। 'आदि हिंदू आन्दोलन' एक सशक्त आन्दोलन के रूप में उभरा। इस आन्दोलन ने दलितों के अंदर चेतना जगाई।

2.4.2 डॉ. अंबेडकर और दलित आन्दोलन

भारतीय संविधान के निर्माता, प्रख्यात विधि विशेषज्ञ, बेजोड़ एंथ्रोपोलोजिस्ट, उच्च कोटि के अर्थशास्त्री, गंभीर पत्रकार, उत्तम संगठन कर्ता डॉ. भीमराव अंबेडकर का उदय भारतीय राजनीति में सन् 1919-1920 ई. के आस-पास होता है। डॉ. अंबेडकर दलितों के मसीहा के रूप के उभरकर सामने आया। भारतीय समाज में दलितों के उत्थान के लिए वे लगातार संघर्षशील रहे। तत्कालीन जातिगत व्यवस्थाओं से राष्ट्र को मुक्ति दिलाने में बाबा साहब का जो योगदान रहा, वह संपूर्ण मानवजाति पर किया गया बहुत बड़ा उपकार था जिसके कारण ही राष्ट्र के वैचारिक और बौद्धिक विकास की अवधारणा का समायोजन हो पाया। उन्होंने सन् 1923 ई. में 'बंबई लेजिस्लेटिव असेंबली' से यह प्रस्ताव पास किया कि तालाब और कुंए सार्वजनिक प्रयोग के लिए है। किसी विशेष जाति का उनपर अधिकार नहीं रहेगा और प्रत्येक व्यक्ति उसके जल का प्रयोग कर सकते हैं। उस समय महाराष्ट्र के कोलाबा जिले के कोलाबा टैंक का पानी अछूतों, दलितों के लिए वर्जित था। लेकिन 'बंबई लेजिस्लेटिव असेंबली' के प्रस्ताव ने कोलाबा टैंक का पानी सार्वजनिक कर दिया। इस तरह डॉ. भीमराव अंबेडकर ने मानव कल्याण हेतु अपने जीवन काल में ऐसे बहुत से आन्दोलन किया जिसे इतिहास में दलित आन्दोलन के नाम से अंकित किया गया हैं।

2.4.2.1 बहिष्कृत हितकारिणी सभा

'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' अछूतों, दलितों, अस्पृश्य जाति की उन्नति के लिए सामाजिक आन्दोलन निर्माण करने की दृष्टि से डॉ. भीमराव अंबेडकर ने 20 जुलाई, सन् 1924 ई. को मुबई में इस सभा की स्थापना की। सदियों से दमित, शोषित और उत्पीड़ित दलितों के अंदर चेतना जगाना इस सभा का मुख्य उद्देश्य था।

2.4.2.2 महाड़ सत्याग्रह

'महाड़ सत्याग्रह' जिसे इतिहास में 'चवदार तालाब सत्याग्रह' या 'महाड़ मुक्ति संग्राम' के नाम से भी जाना जाता है। 20 मार्च, सन् 1927 को डॉ. भीमराव अंबेडकर की अगुवाई में महाराष्ट्र के रायगढ़ जिले के महाड़ स्थान पर दलितों को सार्वजनिक तालाब चवदार से पानी पीने और प्रयोग करने का अधिकार दिलाने के लिए एक प्रभावशाली सत्याग्रह आन्दोलन किया गया था। इस दिन को भारतीय इतिहास में 'सामाजिक सशक्तिकरण दिवस' के रूप में भी मनाया जाता है क्योंकि भारतीय इतिहास में सबसे पहले इसी दिन संपूर्ण भारतीय दलितों ने अपनी शक्ति का परिचय दिया था। इस सत्याग्रह में हजारों की संख्या में दलितों ने भाग लिया। सबसे पहले डॉ. अंबेडकर ने अपने दोनों हाथों से महाड़ तालाब का पानी पिया, फिर उनका अनुकरण संपूर्ण दलित आन्दोलनकारियों ने किया। इसके पहले महाड़ तालाब का पानी मात्र सवर्ण हिंदू ही पी सकते थे। दलितों को तालाब का पानी पीना तो दूर छूना भी मना था। दलितों के प्रति ऐसी असमानता के विरोध में डॉ. भीमराव अंबेडकर ने महाड़ सत्यग्रह किया। डॉ. अंबेडकर ने महाड़ सत्याग्रह का उद्देश्य बताते हुए कहा –"इस सत्याग्रह को इसलिए नहीं कर रहे हैं कि इस तालाब में कुछ अलग गुण है, बल्कि इसलिए कर रहे हैं, क्योंकि हमें नागरिक और मानव होने के कारण अपने स्वाभाविक अधिकार चाहिए।"[52] आगे और इसका स्पष्टीकरण करते हुए बाबा साहब ने कहा –"चवदार तालाब का पानी जब हमने नहीं पिया था, तब भी हमलोग मरे नहीं थे, और पानी पी लेने से अमर नहीं हो जाएंगे। हम यहां पानी पीने नहीं आये है बल्कि यह सिद्ध करने आये हैं कि दूसरों की तरह हम भी इंसान हैं।"[53] ऐसी घटना भारतीय इतिहास में पहली बार हुआ था।

2.4.2.3 कालाराम मंदिर सत्याग्रह

कालाराम मंदिर भारत के प्राचीन मंदिरों में से एक है, जहां भगवान राम की पूजा होती है। यह मंदिर महाराष्ट्र राज्य के नासिक जिले के पंचवटी के निकट स्थित है। इस मंदिर का निर्माण सन् 1788 ई. में हुआ था। इस मंदिर में जाने और पूजा करने का अधिकार सिर्फ और सिर्फ सवर्ण हिंदुओं को ही था। दलितों के लिए मंदिर प्रवेश का अधिकार नहीं था। इसी के विरोध में डॉ. अंबेडकर के नेतृत्व में 2 मार्च, 1930 ई. को कालाराम मंदिर सत्याग्रह आन्दोलन चलाया। इस आन्दोलन में डॉ. अंबेडकर के साथ दादासाअब गायकवाड़, देवराव नाईक, डी. व्ही. प्रधान, बालासाहब खरे आदि दलित नेताएं भी थे। इस आन्दोलन में करीब 15 हजार दलितों ने भाग लिया और साथ ही भारी मात्रा में दलित महिलाओं ने भी इस आन्दोलन में सक्रिय योगदान दिया। प्रशासन और मंदिर के पुजारियों ने इस आन्दोलन का कड़ा विरोध किया। सवर्ण हिंदुओं ने सत्याग्रहियों पर हमला बोला। उनपर पत्थर

बरसाए गये। जिसमें डॉ. अंबेडकर और अन्य कार्यकर्ता गंभीर रूप से घायल हुए। इससे आन्दोलन ढीला पड़ गया। इस तरह कालाराम मंदिर सत्याग्रह असफल रहा।

2.4.2.4 गोलमेज सम्मेलन

ब्रिटिश सरकार और भारतीयों के बीच 12 नवंबर सन् 1930 ई. को साइमन कमीशन की रिपोर्ट तथा संवैधानिक मुद्दों पर चर्चा करने के लिए लंदन में प्रथम गोलमेज सम्मेलन का आयोजन हुआ। ब्रिटिश सरकार और भारतीयों के बीच समान स्तरीय यह पहला सम्मेलन था। लेकिन कांग्रेस के कार्यकर्ताओं ने इसका विरोध किया। इस सम्मेलन में दलितों का प्रतिनिधित्व डॉ. अम्बेडकर ने किया और उन्होंने दलितों की दशा-दिशा बतलाते हुए कहा कि दलित अल्पसंख्यक हैं क्योंकि दलितों को कोई भी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं है। हिदू समाज उनके साथ खान-पान, शादी-ब्याह का कोई संबंध नहीं रखता है और न ही हिदू समाज दलितों को अपने मंदिर में प्रवेश करने का अधिकार ही देता है। अतः दलितों को जब हिंदू समाज का कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं है और उन्हें इस लायक समझा ही नहीं जाता, तब उन्हें अल्पसंख्यकों की तरह पृथक निर्वाचन दे देना चाहिए।

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन दिसम्बर सन् 1931 ई. में हुआ। इस सम्मेलन के दौरान ब्रिटिश सरकार ने दलितों को 'कम्युनल एवार्ड' दिया, जिसके तहत दलितों को अलग निर्वाचन की सुविधा दी गयी। इसे इतिहास में 'साम्प्रदायिक निर्णय' के नाम से जाना जाता है। इसका जोरदार विरोध गांधी और कांग्रेस ने मिलकर किया।

2.4.2.5 पूना पैक्ट (1932)

'कम्युनल अवार्ड' का महात्मा गांधी ने सिर्फ विरोध ही नहीं किया बल्कि इसके विरोध में उन्होंने यरवदा जेल में आमरण अनशन आरम्भ कर दिया। इस घटना से पूरे भारत में सनसनी फैल गयी। इस आमरण अनशन से गांधी की तबियत खराब होने लगी और अन्य नेताओं ने अम्बेडकर पर दबाव डालना शुरू किया। अंत में डॉ. अम्बेडकर को गांधी के आगे झुकना पड़ा और उन्हें समझौता करना पड़ा। यह समझौता पूना में हुआ। इसलिए इस समझौते को 'पूना पैक्ट' के नाम से जाना जाता है।

2.4.2.6 नागपुर सम्मेलन

दलित आन्दोलन में नागपुर सम्मेलन एक अलग महत्ता रखती है। सन् 1942 ई. में नागपुर सम्मेलन में ही डॉ. भीमराव अंबेडकर ने 'अखिल भारतीय शैड्यूल कास्ट फेडरेशन' की स्थापना की। इसके साथ ही इसी सम्मेलन में ही दस हजार दलित महिलाओं की मौजूदगी में 'दलित महिला फेडरेशन' की

स्थापना भी किया गया। इस कार्यक्रम की अध्यक्ष सुलोचना डोगरे थी। दलित महिला सशक्तिकरण की दिशा में यह परिषद बहुत सफल रही।

2.4.2.7 धर्म परिवर्तन आन्दोलन

14 अक्टूबर, सन् 1956 ई. नागपुर में डॉ. अंबेडकर ने अपने लाखों दलित अनुयायियों के लिए एक औपचारिक सार्वजनिक समारोह का आयोजन किया। डॉ. अंबेडकर और उनकी पत्नी ने एक बौद्ध भिक्षु के पारंपरिक तरीके से तीन रत्न ग्रहण किया और पंचशील को अपनाते हुए बौद्ध धर्म ग्रहण किया। इस घटना को इतिहास में धर्म परिवर्तन के नाम से जाना जाता है। डॉ. अंबेडकर का मानना था कि हिंदू समाज में वर्ण-व्यवस्था और जाति-व्यवस्था के कारण दलितों पर अत्याचार होता है। डॉ. अंबेडकर यह अच्छी तरह से जानते थे कि वर्ण और जाति की जड़ धर्म से जुड़ी हुई है। धर्म के नाम पर ही यह शोषण होता है। अतः जब धर्म ही नहीं रहेंगे तो उनका शोषण भी नहीं होगा।

इस तरह डॉ. भीमराव अंबेडकर अपने जीवनपर्यंत दलित समाज के लिए लड़ते रहें और 6 दिसंबर, सन् 1956 ई. में वह कालचक्र में बांध गए।

2.4.3 डॉ. अंबेडकर उत्तर दलित आन्दोलन

दलित आन्दोलन के तीसरे चरण की शुरुआत डॉ. अंबेडकर की मृत्यु के बाद अंबेडकरवाद के रूप में होता है। लेकिन तीसरे चरण में दलित आन्दोलन स्पष्ट रूप में दो भागों में बंट गया। जिसमें दलित आन्दोलन की एक शाखा कांग्रेस के साथ मिलकर दलित उत्थान की बात कर रहे थे, जिसका नेतृत्व जगजीवन राम जैसे दलित नेता कर रहे थे और दूसरी शाखा के अंतर्गत दलित आन्दोलन स्वतंत्र रूप से विकसित हो रहा था। दूसरी शाखा के अंतर्गत हम दलित पैंथर्स, बहुजन समाज पार्टी, आर.पी.आई. को रख सकते हैं।

सन् 1972 ई. में महाराष्ट्र में 'दलित पैंथर्स' नामक संगठन की स्थापना हुई। इस संगठन के प्रमुख कार्यकर्ता नामदेव ढसाल, ज.वि.पवार, राजा ढाले, रामदास सोरटे, लतिफ खाटिक, अर्जुन डांमले, अनिल कांबले आदि दलित बुद्धिजीवी थे। इन कार्यकर्ताओं ने महाराष्ट्र के गाँव-गाँव जाकर दलितों के अंदर चेतना जगाने का काम किया। जिससे दलित जनता जागृत हो उठा और अपनी अस्मिता की लड़ाई के लिए आगे आया। इस संगठन के माध्यम से सभी दलितों ने एकजुट होकर समाज के उच्च वर्ग के अन्याय और अत्याचार का जोरदार विरोध किया। दलित पैंथर्स ने दलित आन्दोलन को काफी मजबूती दी। "पैंथर्स की कार्यकर्ताओं को जहाँ भी सामाजिक उत्पीड़न की खबर

मिलती थी, वे समूह में वहाँ पहुँचते थे और प्रदर्शन आदि के जरिये पूरजोर विरोध करते थे। कई बार तो इस विरोध में उत्पीड़न करने वालों को शारीरिक दंड देना भी शामिल होता था।''[54]

सन् 1975 ई. के आसपास महाराष्ट्र में एक जुझारू नेता का आगाज हुआ जिनका नाम कांशीराम था। उन्होंने डॉ. अम्बेडकर के बाद दलित आन्दोलन का कमान अपने हाथों लिया। कांशीराम 'बहुजन समाज पार्टी' (1984) के संस्थापक अध्यक्ष थे। उन्होंने दलितों के सामाजिक-राजनीतिक अधिकार के लिए काफी संघर्ष किया। वास्तव में वह अम्बेडकर के सच्चे उत्तराधिकारी थे। पत्रकार खुशवंत सिह लिखले हैं –"अम्बेडकर दलितों के नायक थे, जगजीवन बाबू सरकारी शख्सीयत रहे। पर दलितों की आवाज कांशीराम ही थे।''[55]

कांशीराम के नेतृत्व में ही 'बामसेफ' एक गैर-राजनीति संगठन की स्थापना हुई। यह एक व्यापक और सशक्त स्वयंसेवी संगठन है। जिस समय दलित पैंथर का निर्माण हुआ उसी के एक-दो वर्ष बाद ही यह संगठन अस्तित्व में आया। यह संगठन पहले 'दलित कर्मचारी पदाधिकारी संघर्ष समिति' के नाम से जाना जाता था। इसका सदस्य केवल दलित कर्मचारी ही बन सकता था। बाद में सन् 1978 ई. में संगठन को मजबूती प्रदान करने हेतु संगठन का नाम बदलकर 'बामसेफ' रखा गया। 'बामसेफ' अर्थात् 'बैकवर्ड एस.सी/एस.टी/ओ.बी.सी एंड माइनरिटीज इम्पलाइज फेडरैशन' नाम के बदलने के साथ ही इसमें अनुसूचित जाति के साथ-साथ जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग और अल्पसंख्यक भी जुड़ गया। आरंभ में 'बामसेफ' के पास 20,000 सदस्य थे, जिसमें 1500 वैज्ञानिक एवं 3000 डॉक्टर थे। इस संगठन का मुख्य नारा 'समाज को वापस दो' था। कांशीराम ने ही दलित आन्दोलन को और तेज करने के लिए 6 दिसंबर, सन् 1981 में 'दलित शोषित समाज संघर्ष समिति' (डी.एस-4) की स्थापना की।

कांशीराम द्वारा स्थापित 'बहुजन समाज पार्टी' पहले एक मात्र दलितों की पार्टी थी लेकिन अब यह पार्टी सार्वजनिक पार्टी बन चुकी है। उत्तर प्रदेश में 'बसपा' की नींव पड़ते ही दलितों ने अपना मुद्दा खुद तय किया। इसी पार्टी ने पहली बार दलित महिला नेता मायावती दिया। मायावती के सत्ता में आने के बाद दलितों ने अपनी चेतना और विवेक का परिचय दिया और पहली बार दलितों ने भारतीय संविधान के अंतर्गत गणतंत्र के पूर्ण एवं निर्णयक भूमिका के साथ भागीदारी भी किया।

2.5 दलित आन्दोलन: दशा और दिशा

न्यूटन का नियम कहता है 'प्रत्येक क्रिया के बराबर विपरीत प्रतिक्रिया होती है'। यह नियम दलित आन्दोलन पर बिल्कुल फिट बैठता है। दलित वर्ग को हमेशा से मनुवादी व्यवस्था के तहत दबाया

गया। उसपर शोषण और अत्याचार किया गया, उसे हाशिये पर रखा गया और उसे अभिव्यक्ति का मौका नहीं दिया गया। लेकिन धीरे-धीरे दलितों में चेतना जगने लगी और इस मनुवादी व्यवस्था का विरोध करने लगा। इसी विरोध का परिणाम है दलित आन्दोलन। दलित आन्दोलन मनुवादी व्यवस्था के विरुद्ध खड़ा एक ऐसा आन्दोलन है जो पूरी तरह से सामंतवादी, मनुवादी और ब्राह्मणवादी व्यवस्था का खंडन करता है। लेकिन समय के साथ-साथ दलित आन्दोलन में विकृतियाँ आती गयीं। जिसके कारण दलित आन्दोलन गलत दिशा की ओर अग्रसर होता जा रहा है। दलित आन्दोलन आज अपने ही कारण दिन-ब-दिन नयी-नयी समस्याओं से जूझ रहा है।

दलित आन्दोलन की उत्पत्ति ही वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध में हुआ है। ब्राह्मणवादी नैतिकता के खिलाफ उठी आवाज है दलित आन्दोलन। दलित आन्दोलन जातिगत नैतिकता, धार्मिक नैतिकता, कर्म-काण्ड, ऊँच-नीच आदि का जोरदार खंडन करता है। लेकिन वर्तमान में यह स्थिति ठीक विपरीत है। आज स्वयं दलित वर्ग ब्राह्मणों के देख-रेख में उन सभी रीति-रीवाजों को मानने लगा है जिसका पहले विरोध करता था। दलित आज ब्राह्मणवाद के अनुकरण पर उतर आया है। आज दलित व्रत, तीर्थ-यात्रा, भाग्यवाद, रुढ़िवाद, भजन-कीर्तन आदि उन सभी चीजों को करने-कराने, मानने-मनाने में लगे हुए हैं जो ब्राह्मणवाद का पोषक तत्त्व है। महान दलित आलोचक एम.एन. श्रीनिवास इसे 'संस्कृतिकरण' का नाम दिया है। वे कहते हैं "अगर कोई गैर-द्विज जाति खास तौर से ब्राह्मणों को मॉडल बनाती है जो इसे ब्राह्मणीकरण भी कह सकते हैं, लेकिन संस्कृतिकरण में नीची जातियों ने अक्सर क्षत्रियों को मॉडल माना है।"[56] दलित कल जिसका विरोध करता था आज उसी को अपना मॉडल मानने लगा है। दलित आज ब्राह्मणवाद को ही 'आईकॉन' बना बैठा है, जो दलितों की दिशा हीनता को दर्शाता है।

दलितों के महानायक डॉ. अंबेडकर का मंदिर प्रवेश आन्दोलन का उद्देश्य यह नहीं था कि दलित भी उस मंदिर में जाकर पूजा-पाठ करें बल्कि यह था कि दलितों को वह सभी अधिकार मिले जो एक आम नागरिक का अधिकार है। एक दलित भी स्वतंत्र रूप से उन सार्वजनिक स्थानों में आ-जा सकें जैसे सभी वर्ग आते-जाते हैं। लेकिन दलितों ने इस आन्दोलन को अलग रूप दे दिया है। आज दलित अपना मंदिर निर्माण कर रह है। पूजा-पाठ कर रहा है। तीर्थ-यात्रा कर रहा है। बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ चैराहे पर लगा रहा है। उसका भव्य रूप से पूजा किया जा रहा है। इस सभी चीजों से दलित स्वयं आज जाने-अनजाने ब्राह्मणवाद का पोषण कर रहा है। दलित स्वयं धीरे-धीरे ब्राह्मणवाद के गिरफ्त में आ रहा है।

धर्मांतरण आज दलितों में एक बहुत बड़ी समस्या बनती जा रही है। वैसे धर्मान्तरण हर व्यक्ति का अधिकार है। हर व्यक्ति अपनी रुचि अनुसार जब चाहे किसी धर्म को अपना सकता है और जब चाहे किसी धर्म को छोड़ भी सकता है। आज दलित धर्म परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन के रूप में देख रहा है। धर्म को सामाजिक परिवर्तन का औजार बनाया जा रहा है। प्रकाश लुईस दलितों के इस धर्म परिवर्तन पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं -"अगर धर्मान्तरण व्यक्तिगत विकास में आस्था रखकर किया जाता है, तो आगे विचार करने की जरूरत नहीं है। लेकिन जब धर्मान्तरण को न केवल एक धर्म से दूसरे धर्म में परिवर्तन, मगर सामाजिक परिवर्तन के एक बुनियादी औजार के रूप में मानकर चलें तब धर्मान्तरण के नाम पर जो भी हो रहा है, उस पर सवाल खड़ा करना व्यवहारिक है।''[57] दलितों को यह बात जानना अति आवश्यक है कि दलित उत्पीड़न का मुख्य कारण सामाजिक है, धार्मिक नहीं। धर्म तो मात्र एक दिखावा है, शोषण के मूल में वर्ण-व्यवस्था ही है। धर्म बदलने से व्यक्ति का अस्तित्व नहीं बदलता। धर्म बदलने से व्यक्ति की संस्कृति नहीं बदलती।

समाज चाहे हिन्दुओं का हो या मुसलमानों का या और फिर ईसाईयों का, जाति व्यवस्था हर समाज में है। छुआछूत, भेदभाव, ऊँच-नीच आदि की बीमारी हर समाज में फैली हुई है। जहाँ हिन्दू समाज में ब्राह्मण और शूद्र है तो वहीं मुसलमानों में अशराफ़ और अज़लाफ। धर्म परिवर्तन से सिर्फ उसके नाम में परिवर्तन आता है। पहले जिसे 'दलित हिंदू' कहा जाता था, आज उसे एक 'मुसलमान दलित' का नाम दिया जाता है। बात एक ही है, सिर्फ विशेषण बदल जाता है। दलित, दलित ही रहता है। इसलिए दलितों को धर्मान्तरण पर नहीं सामाजिक बदलाव पर जोर देना होगा। लेकिन आए दिन दलितों के धर्म परिवर्तन की खबर अखबार, न्यूज चैनेल आदि के माध्यम से सुनने को मिलती है। हाल ही के हिंदी दैनिक पत्रिका 'दैनिक जागरण' में खबर आयी थी कि "डुमरांव अनुमंडल के चैंगाई गांव में पांच सौ हिंदुओं ने धर्म परिवर्तन कर ईसाई धर्म अपना लिया है। धर्मान्तरण करने वाले महा दलित वर्ग से हैं। उन्हें बेहतर जिन्दगी का भरोसा दिलाया गया है। गांव में बचे पांच सौ और महादलितों पर भी धर्म परिवर्तन का दबाव बनाया जा रहा है।''[58]

दलित बौद्धिक वर्ग धर्मान्तरण की इस राजनीति का विरोध कर रहे हैं। दलित बौद्धिक वर्ग धर्म परिवर्तन पर पुनः विचार करने लगे हैं। कंवल भारती कहते हैं -"आधुनिक चुनौतियों के मद्देनजर धर्मान्तरण की प्रक्रिया दलितों में शुरू हो गई है। एक ऐसा बौद्धिक दलित वर्ग उभर रहा है, जो धर्मान्तरण को दलित समस्या का हल नहीं मानता है। यह वर्ग डॉ. अंबेडकर के उन विचारों से सहमत है, जो उन्होंने 1940 के दशक में श्रम की हैसियत से मजदूर वर्ग के हित में व्यक्त किए थे। यह दलित चिंतन डॉ. अम्बेडकर के इस मत को अत्यंत महत्त्वपूर्ण मानता है कि इतिहास की आर्थिक व्यवस्था

का अर्थ यह है कि मजदूर वर्ग को वैसी प्राथमिकता दें, जिस तरह मालिक वर्ग को देता है। दलित चिंतकों का यह वर्ग डॉ. अंबेडकर के इस विचार को आगे बढ़ाना चाहता है कि मजदूर वर्ग को एक सम्पूर्ण वर्ग के रूप में जीवन से जुड़े आर्थिक तथ्यों को ताकत देने में सफल होना है।''[59] आगे कंवल भारती दलितों के इस धर्मान्तरण पर प्रश्न खड़ा करते हुए कहते हैं "दलित धर्मान्तरण करता है। किन्तु वह यह सवाल भी उठाता है कि जब वर्ण-व्यवस्था सभी समाजों में व्याप्त हो चुकी है तो धर्मान्तरण करने पर उससे मुक्ति कैसे मिल सकती है ? दलित किसी भी धर्म को अपनाए, भले ही वह बौद्ध धर्म को अपनाए, उसकी सामाजिक स्थिति में अंतर नहीं आता है। तब क्यों न दलित उस अर्थव्यवस्था से लड़ने के लिए संघर्ष करें, जो उसे अशिक्षित, गुलाम और दरिद्र बनाए हुए है ? अब दलितो को धर्मान्तरण के साथ-साथ इस प्रश्न पर भी विचार करना होगा कि धर्मान्तरण के बाद उसके आर्थिक हितों पर क्या प्रभाव पड़ने वाला है, या जिस धर्म में वह जाना चाहता है, उसका आर्थिक दर्शन क्या है और उसके लिए आर्थिक कार्यक्रम क्या है?''[60] एक बात तय है कि दलितों का धर्म परिवर्तन समस्या का समाधान नहीं है क्योंकि समस्या धर्म में नहीं, व्यवस्था में है और इसका समाधान भी सामाजिक तरीके से ही होगा। इसके लिए सामाजिक आन्दोलन की आवश्यकता है। डॉ. सुभाष चंद्र कहते हैं "दलितों के प्रति अन्याय इसलिए नहीं है कि वे किसी खास धर्म से ताल्लुक रखते हैं, बल्कि उनके प्रति समाज में उत्पीड़न इसलिए है कि वे आर्थिक तौर पर दरिद्र व सम्पत्तिहीन, सामाजिक तौर पर नीच व हीन तथा राजनीतिक तौर पर असुरक्षित व कमजोर हैं। इन सब पक्षों को समाहित करने वाला आन्दोलन ही दलित मुक्ति की दिशा ग्रहण करने की क्षमता रखता है।''[61]

'समानता, स्वतंत्रता और भाईचारा' दलित आन्दोलन का नारा है। जाति-उन्मूलन इसका लक्ष्य है। लेकिन वर्तमान स्थिति ऐसी है कि दलित समाज ही आपस में बंटा हुआ है। आज एक दलित दूसरे दलित से कम से कम रोटी का सम्बंध रखना चाहता है। आज दलितों में कुछ दलित शिक्षित होकर नौकरी पाने लगे हैं। इससे दलित समाज में भी एक और दलित मध्यवर्ग का निमार्ण हो गया है और यह मध्यवर्ग जातिगत भेद-भाव तोड़ने की बजाह इसे और हवा दे रहा है। इससे दलितों में भी आपसी मत-भेद होने लगा है जिसका सीधा-सीधा प्रभाव दलित आन्दोलन पर पड़ रहा है। डॉ. सुभाष चंद्र लिखते हैं -"दुर्भाग्यपूर्ण है कि दलितों में से उभरा मध्यवर्ग दलित आन्दोलन को पुख्ता करने की बजाह उसे जाति आन्दोलन में तब्दील कर रहा है। अपने समाज को जातिगत पहचान देकर पुरानी संरचनाओं में जकड़ रहे हैं। दलित प्रतीकों के लिए संघर्षों से वास्तविक बदलाव के ठोस मुद्दे गायब हो रहा है। दलित आन्दोलन का विकास जाति तोड़ने की प्रक्रिया में विकसित होगा, न कि जातिगत स्वाभिमान के प्रदर्शन में।''[62] सामाजिक रूप में एकता की कमी के कारण ही दलित आन्दोलन एक

सशक्त आन्दोलन के रूप में उभर नहीं पाया है। दलित आन्दोलनकारी को एक प्रगतिशील दृष्टि की आवश्यकता है। बिना प्रगतिशील दृष्टि के आन्दोलन सफल नहीं हो सकता।

दलित आन्दोलन मूलतः सामाजिक आन्दोलन है। लेकिन सामाजिक रूप में अपने को स्थापित करने के लिए राजनीतिक अधिकार पाना आवश्यक है। आज दलित सिर्फ वोट बैंक नहीं है उसे वोट के माध्यम से सत्ता भी हासिल हो रहा है। लेकिन समस्या यह है कि सत्ता पाने के साथ ही दलित अपना रूप बदलने लगता है। जो दलित पहले दलित, दलित कहकर चिल्लाता था, आज वही सत्ता पाने के बाद अपने आप को दलित कहने से हिचकिचाता है। सीधे तौर पर कहें तो अपनी जाति छुपाने लगता है। सत्ता हथियाने के बाद दलित अपना अतीत, अपनी परम्परा, दलितों से किए गए वादें आदि सबकुछ भूल जाता है। इस तरह से देखें तो दलित आन्दोलन अवसरवाद का शिकार हो रहा है। जो दलित आन्दोलन के भविष्य के लिए संकट है।

दलित आन्दोलन को विस्तार की आवश्यकता है। मुख्यधारा से पिछड़े सभी वर्गों को एक साथ अपनी आवाज उठाना चाहिए। इस आन्दोलन के तहत स्त्री, आदिवासी, पिछड़ी जाति सभी को शामिल होना चाहिए। इस सभी के बीच एकता स्थापित करके आन्दोलन को और मजबूत किया जा सकता है। इससे आन्दोलन का विस्तार भी होगा और इसका प्रभाव भी गहरा होगा। लेकिन वर्तमान स्थिति यह बताती है कि दलितों के बीच ही आपसी एकता नहीं है। आज एक दलित दूसरे दलित का दुश्मन बना हुआ है। आन्दोलन में स्त्री विषय को भी शामिल करना चाहिए। समाज चाहे दलितों का हो या गैर दलितों का सभी में पितृसत्ता हावी है। आतः इस पितृसत्तात्मक सोच को जड़ से उखाड़ना है। स्त्रियों को उनका अधिकार देना चाहिए।

दलितों को केवल सामाजिक समानता पर नहीं आर्थिक समानता के मुद्दों पर भी बात करनी चाहिए। दलितों पर उत्पीड़न का एक कारण आर्थिक भी है। दलितों को मार्क्सवादी दृष्टि भी अपनाने की आवश्यकता है। मार्क्सवाद आर्थिक समानता की बात करता है। दलित आर्थिक रूप से विपन्न है। वह गरीब और दरिद्र है। इसतरह से दलितों को मार्क्सवाद का विरोध नहीं बल्कि बौद्धिकता के साथ उसे भी ग्रहण करना चाहिए।

भूमंडलीकरण का सीधा प्रभाव दलित आन्दोलन पर पड़ा है। वैश्वीकरण, भूमंडलीकरण का सीधा-सीधा सम्बंध खुला व्यापार से है। यानी एक देश दूसरे देश से मुक्त रूप में व्यापार कर सकता है। जैसे ही भारत में भूमंडलीकरण लागू हुआ वैसे ही विदेश के पूंजीपति वर्ग अपनी पूंजी वृद्धि के लिए भारत आए और भारत सरकार ने भी उनका स्वागत जोरदार तरीके से किया। विदेशी पूंजीपति अपनी

पूंजी यहाँ निवेश करने लगा, इससे सरकार को भी लाभ पहुंचा। सरकारी क्षेत्रों का निजीकरण होने लगा। शिक्षा भी इससे अछूती नहीं रही। शिक्षा में निजीकरण आने से दलितों को शिक्षा लेने में परेशानियाँ आने लगीं। जो शिक्षा दलितों को पहले मुफ्त में मिलती थी आज उसके लिए फीस चुकानी पड़ती है। इससे दलितों के शिक्षित दरों में कमी आने लगी है। जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दलित आन्दोलन में पड़ा है।

2.6 दलित आन्दोलन का साहित्यिक परिप्रेक्ष्य

दलित आन्दोलन एक सामाजिक आन्दोलन है। सामाजिक आन्दोलन होने के कारण इसका सीधा संबंध साहित्य से बनता है। दलित साहित्य हमेशा इससे प्रेरित और प्रभावित होता रहा है। अगर एक वाक्य में कहा जाय तो दलित आन्दोलन ही दलित साहित्य की जननी है। दलित साहित्य का जन्म ही दलित आन्दोलन की कोख से हुआ है। इसीलिए दलित साहित्य पर दलित आन्दोलन की महत्ता बतलाते हुए बी. एस. साहू कहते हैं -"दलित साहित्य और दलित आन्दोलन का सवाल अपने आप में बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसलिए कि दलित साहित्य का सूत्रपात ही सक्रिय सामाजिक आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर हुआ है और वही अब साहित्य के अंतर्गत सामाजिक परिवर्तन की सुदृढ़ विचारधारा का समावेश है।''[63]

दलित समाज पर होने वाले शोषण एवं अत्याचार का सिलसिला बहुत पुराना है। इसका बीजवपन वैदिक काल में ही हुआ था। ऋग्वेद के दसवें मंडल के पुरुष सूक्त में 12वें मंत्र में कहा गया है:

"ब्राह्मणोस्य मुखमासीद बहू राजन्यः कृतः।

ऊरू तस्य यद वैश्यः पदभ्यां शूद्रों अजायत।।''[64]

जिसका अर्थ है ब्राह्मण पुरुष मुख से, राजन्य उसकी भुजाओं से, वैश्य जंघाओं से तथा शूद्र उसके पैरों से उत्पन्न हुए हैं। इस वर्णव्यवस्था को खुली चुनौती उस समय के संप्रदायों ने किया। वर्ण-व्यवस्था पर सबसे पहला प्रहार 'लोकायत संप्रदाय' और चार्वाक मत के अनुनायियों ने किया। ऋग्वेद के इस दसवें मंडल के पुरुष सूक्त पर प्रहार किया। बंजरंग बिहारी तिवारी लिखते हैं -"प्राचीन संप्रदायों में से एक लोकायत संप्रदाय या चार्वाक मत ने संभवतः सबसे पहले वैदिक व्यवस्था को प्रश्नों के घेरे में लेने की कोशिश की। यह दीगर बात है कि लोकायत संप्रदाय बहुत व्यापक व दीर्घजीवी नहीं हो पाया।''[65] इसके बाद यह विरोध की परम्परा बौद्धों, सिद्धों और नाथों और के काल से लेकर कबीर,

रैदास के समय तक चलती गयी। मध्यकालीन संतों ने ब्राह्मणों-क्षत्रिया-वैश्य आदि के भेदभाव को पूरी तरह नकारा। कबीर, रैदास, दादू आदि जैसे संतों ने जाति-वाद और वर्ण-व्यवस्था का खुलकर विरोध किया और ब्राह्मणवादी ताकतों को चुनौती दीं। प्रसिद्ध दलित लेखक जयप्रकाश कर्दम लिखते हैं "कबीर और रैदास की वाणी में ब्राह्मणवादी तथा जातिवादी सामाजिक सोच का विरोध ही नहीं किया अपितु एक ऐसे समाज की स्थापना का आधार तैयार किया जिसमें वर्ण, जाति व लिंग के आधार पर भेदभाव न हो। जिसमें छुआछूत, ऊँच-नीच न हो तथा जो समता, स्वतंत्रता व बंधुता पर आधारित हो।''[66]

आधुनिक काल में सन् 1914 ई. में सरस्वती पत्रिका में हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' नाम से प्रकाशित हुई। कविता की भाषा भोजपुरी है। बहुत लोग इसी कविता को हिंदी की प्रथम दलित कविता मानते हैं। लेकिन यह विवाद का विषय है। रमणिका गुप्ता प्रस्तुत कविता पर अपनी बात रखते हुए कहती हैं –"सितंबर, 1914 की सरस्वती में पटना के हीरा डोम की कविता प्रकाशित हुई। यह भोजपुरी में है और सम्भवतः उस भाषा में लिखी हुई यह एक मात्र कविता है जो द्विवेदी जी के सरस्वती में प्रकाशित हुई थी। यह कविता उनके पास भेजी गई थी, क्योंकि ऊपर कोष्ठकों में छपा है।''[67] कविता 'अछूत की शिकायत' के कुछ भाग यहाँ प्रस्तुत है-

"हमनी के रात दिन दुःखवा भोगत बानी

हमनी के सहेबे से गिनती सुना इबि।

हमनी के दुख भगवनओ न देखता जे

हमनी के कबले कलेसवा उठाइबि।

पदरी साहब के कचहरी में जाइबिजा

बेधरम होके रंगरेज बनि जाइबि।

हाय राम धरम न छोड़त बनत बाजे

बेधरम होके कैसे मुँहवा देखाइबि।''[68]

हीरा डोम ने अपनी कविता में दलित शोषण और उत्पीड़न का सजीव चित्रण किया है। उनकी कविता में सहानुभूति नहीं स्वानुभूति है। हीरा डोम स्वयं दलित होने के कारण, दलित का दर्द उन्होंने

भोगा था। हीरा डोम की इस कविता पर टिप्पणी करते हुए मैनेजर पांडेय कहते हैं -दलित चेतना की ठीक-ठाक अभिव्यक्ति करने वाली रचना सबसे पहले सरस्वती पत्रिका में छपी थी।''[69]

हीरा डोम की यह कविता विवाद का विषय रहा है। प्रश्न न सिर्फ इसकी समय सीमा पर बल्कि इसके रचनाकार पर भी उठाया गया। दलित आलोचक कंवल भारती कहते हैं -"सरस्वती में प्रकाशित 'अछूत की शिकायत' का ठीक-ठीक रचना समय क्या है? या यह हीरा डोम की ही रचना है, अथवा किसी अन्य लोककवि की, जिसे हीरा डोम ने प्रकाशनार्थ भेजा हो? विचारणीय तत्त्व यह भी है कि किसी रचना को पत्रिका में वही रचनाकार प्रकाशनार्थ भेज सकता है, जो पत्र-पत्रिकाओं के संसार से परिचित हो। यदि हीरा डोम ने सरस्वती को अपनी रचना प्रकाशनार्थ भेजी थी तो स्पष्ट है कि वे पढ़े-लिखे थे और पत्रिकाओं के संसार से भी परिचित थे। तब यह नहीं हो सकता कि हीरा डोम ने सिर्फ यही एक गीत लिखा हो, उन्होंने और भी कविताएँ लिखी होंगी। वे कविताएँ कहाँ हैं? इसकी कोई जानकारी आज उपलब्ध नहीं है।''[70]

हिंदी साहित्य में गैर-दलित वर्ग के लेखकों ने भी दलित साहित्य पर अपनी कलम चलाई हैं। इन गैर-दलित लेखकों में सबसे पहले निराला आते हैं। उनकी कुछ कविताएं 'तोड़ती पत्थर' और 'भिक्षुक' में दलित चेतना देखने को मिलती है और साथ ही उनकी 'चातुरी चमार' नाम की संस्मरणात्मक कहानी भी दलित जीवन पर आधारित है। 'कुल्लीभाट' उपन्यास के माध्यम से निराला ने हिंदू समाज पर चोट कसा है। निराला के बाद नागार्जुन का नाम इन पंक्ति में लिया जा सकता है। उनकी कविता 'हरिजन गाथा' में बिहार के दलितों की दुर्दशा का चित्रण किया गया है। विष्णु खरे ने भी अपनी कविता 'सिर पर मैला ढोने की अमानीय प्रथा' लिखकर जाति-व्यवस्था पर गहरा प्रहार किया।

यह वही समय था जब हिंदी गद्य साहित्य में प्रेमचंद ने दस्तक दिया। प्रेमचंद ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने लेखन के लिए विषय-वस्तु के रूप में उस वर्ग को चुना जो अबतक साहित्य में उपेक्षित और हाशिये पर था। दलित और निम्न वर्ग को साहित्य में लाने का काम प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं के माध्यम से किया। उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से भारतीय जाति व्यवस्था का पोल खोलकर रख दिया। उनका साहित्य एक तरह से भारतीय समाज का आईना है। मैनेजर पांडेय कहते हैं –"जाति व्यवस्था और उससे जुड़ी वास्तविकताओं तथा समस्याओं को हिंदी के कथा साहित्य के केन्द्र में लाने का काम प्रेमचंद ने किया।''[71]

प्रेमचंद के दलित चेतना से ओत-प्रोत कहानियों में से प्रमुख कहानियां हैं- 'सद्गति', 'ठाकुर का कुआं', 'कफन', 'मंदिर', 'सवा सेर गेहूं', 'दूध का दाम' आदि-आदि। उनकी कहानी 'ठाकुर का कुआं' पर मैनेजर पांडेय ने कहा हैं -" 'ठाकुर का कुआं' केवल एक कुआं नहीं है, बल्कि सारा हिंदू समाज ठाकुर का कुआं है, जिसमें अछूतों को डूब मरने की सुविधा तो है, पीने का पानी लेने की सुविधा नहीं है।''[72]

कहानियों के साथ-साथ प्रेमचंद के उपन्यासों के केंद्र में भी दलित, निम्न-वर्ग है। 'प्रेमाश्रम', 'कायाकल्प', 'कर्मभूमि', 'गोदान' आदि सभी उपन्यासों के मुख्य पात्र निम्नवर्ग से है जो व्यवस्था के शिकार हैं। इन सबके बावजूद प्रेमचंद पर सामान्तवादी सोच का आरोप लगाया जाता है। यहाँ तक कि उन्हें 'सामानतों का मुंशी' तक कहा गया। मुद्दा यह नहीं कि प्रेमचंद 'सामानतों का मुंशी' हैं या नहीं? लेकिन इतना तो तय है कि प्रेमचंद ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने साहित्य को यथार्थ के साथ जोड़ा। साहित्य में दमित, शोषित, उपेक्षित वर्ग को जगह दी। प्रेमचंद ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने सबसे पहले एक निम्न वर्ग के पात्र को साहित्य का 'हीरो' बनाया। अतः प्रेमचंद के अवदान को दलित साहित्य या दलित साहित्यकार नकार नहीं सकता। ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं -"तमाम सहमतियों, असहमतियों के बावजूद प्रेमचंद अपने समय के एक ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने हिंदी साहित्य में यथार्थ को स्वीकार्य बनाया, पाठकों की रुचि विकसित की। साहित्य को प्रासांगिक बनाया। प्रेमचंद प्रामाणिक, अनुभवजनित यथार्थ के लेखक हैं। दलित रचनाकार उनके साहित्य-यात्रा से प्रेरणा लेता है।''[73]

प्रेमचंद के बाद दलित चेतना को स्वर देने वाले साहित्यकारों में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का नाम लिया जा सकता है। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' प्रेमचंद के साथ-साथ ही लिख रहे थे। उनका उपन्यास 'बुधुवा की बेटी' सन् 1928 ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास का मुख्य पात्र राधिका एक भंगी जाति की है। राधिका के माध्यम से उग्र जी ने स्त्री पर होने वाली दोयम अत्याचार को दिखाया है। एक पुरुषवादी मानसिकता किस तरह स्त्री पर हावी होती है, इसे उपन्यासकार ने बखूबी दिखाया है। डॉ. कुसुम मेघवाल के अनुसार –"हिंदी का यह पहला उपन्यास है जिसमें भंगी जाति की पात्री को नायिका का स्थान प्राप्त हुआ है।''[74] जगदीस चंद्र का 'धरती धन न अपना', अमृतलाल नागर का 'नाच्यौ बहुत गोपाल', गिरिराज किशोर का 'परिशिष्ट' आदि दलित जीवन को केन्द्र में रखकर लिखा गया उपन्यास है। इन उपन्यासों में दलितों के आर्थिक, शारीरिक, मानसिक, सांस्कृतिक शोषण को दिखाया गया है।

गैर-दलित रचनाकारों में रमणिका गुप्ता का नाम सर्वोपरी है। उनकी अपनी कहानी 'बहू जुठाई' के साथ वह साहित्य में दस्तक देती हैं। यह कहानी बिहार में चल रही सामंती प्रथा पर आधारित कहानी है। 'बहू जूठाई' के अंतर्गत दलित नवविवाहिता को अपनी पहली रात गाँव के सामंत के घर रहना पड़ता है। रमणिका गुप्ता ने अपनी कहानी के माध्यम से इस प्रथा का जोरदार खंडण किया है। 'दूसरी दुनिया का यथार्थ' में प्रकाशित गिरिराज शरण की कहानी 'अस्वीकृति' की कथा-वस्तु जयप्रकाश कर्दम की कहानी 'नो बार' से मिलती-जुलती है। दोनों कहानीकारों ने अपनी कहानी में प्रगतिशीलता के दिखावे करने वालों की पोल खोला है। ऐसे व्यक्ति सिर्फ बाहरी आवरण से प्रगतिशील होते हैं, अंदर वही रुढ़िवादी मानसिकता लिए हुए होते हैं।

नवें दशक के बाद में दलित साहित्य में बाढ़ सी आ गई। चाहे वह कविता हो या कहानी या फिर उपन्यास हो या आत्मकथा। हर विद्या में दलितों ने अपनी बात स्वयं उठाई है। दलितों ने अपनी आपबीती अपनी ही कलम से कहना शुरू किया। कविता में डॉ. धर्मवीर की 'हीरामन' और 'किनारे भी मंझधार भी', कवि कुसुम वियोगी की 'प्रतिशोध', श्यौराज सिंह 'बेचैन' की नई फसल' और 'क्रौंच हूं मैं', एन. आर. की 'आजाद हैं हम', कंवल भारती की 'तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती' आदि कविता संग्रह हैं। कहानी के क्षेत्र में नैमिशराय की 'एक अखबार की मौत', सूरजपाल चौहान की 'परिवर्तन की बात', निरंकुश की 'बेड़िया', अरुण प्रकाश की 'कहानी नहीं', राम आरसे की 'आह', डॉ. सी.बी. भारती की 'स्टेटस', सुशीला टाकभौरे की 'सिलिया', प्रेम कपाड़िया की 'हरिजन' आदि कहानीकारों की कहानियों ने दलित साहित्य के भाव-भूमि को और भी उर्वर बना दिया। वहीं उपन्यास में जयप्रकाश कर्दम का 'छप्पर', प्रेम कपाड़िया के 'मिट्टी की सौगंध', सिद्धार्थ की 'इंसान बनाम अछूत', मोहनदास नैमिशराय का 'मुक्तिपर्व', कावेरी की 'मिस रमीया', सत्यप्रकाश का 'जस-तस भई सवेर', अजय नावरिया का 'उधर के लोग' आदि उपन्यासों ने दलित साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। उसी तरह अगर आत्मकथा की बात करें तो 'आत्मकथा' ही वह विद्या है जिसने दलित साहित्य को एक नयी पहचान दी। सूरजपाल चौहान की 'तिरस्कृत' और 'संतप्त', डॉ. श्यौराज सिंह 'बेचैन' की 'मेरा बचपन मेरे कधों पर', डॉ. डी. आर. जाटव की 'मेरा सफर मेरी मंजिल', माता प्रसाद की 'झोपड़ी से राज भवन तक', डॉ. धर्मवीर की 'मेरी पत्नी और भेड़िया', मोहनदास नैमिशराय की 'अपने-अपने पिंजरे' (दो भागों में), भगवानदास की 'मैं भंगी हूँ', रूपनारायण सोनकर की 'नागफनी', डॉ. तुलसी राम की 'मुर्दहिया' और 'मणिकर्णिका' आदि आत्मकथाएँ हैं। अब आत्मकथा की इस विद्या में दलित स्त्रियाँ भी जुड़ गई हैं। ये स्त्रियाँ अपने ऊपर हो

रहे दोहरे शोषण को अपनी आत्मकथा के माध्यम से लेकर आ रही है। कौशल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप' और सुशिला टाकभौरे की 'शिंकजे का दर्द' दलित महिला लिखित आत्मकथाएँ हैं।

2.7 हिंदी दलित साहित्य और ओमप्रकाश वाल्मीकि

हिंदी दलित साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण परम्परा रही है, जो दिनोंदिन और अधिक समृद्ध हो रहा है। हिंदी साहित्य में दलित विमर्शगत साहित्यिक आन्दोलन से आकार प्राप्त करने वाले, हिंदी दलित साहित्य को प्रतिष्ठित और समृद्ध करने में जिन प्रमुख दलित साहित्यकारों का योगदान रहा है, उसमें ओमप्रकाश वाल्मीकि अपना विशेष स्थान रखते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि हिंदी साहित्य में उस समय दस्तक देते हैं जब एक तरफ भारत ने विश्व बाज़ार के स्वागत के लिए अपने सभी दरवाज़े खोलने शुरू कर दिए थे, तो दूसरी तरफ साम्प्रदायिक दंगे अपनी पूरी चरम सीमा पर थी, जिसका परिणाम बाबरी मस्जिद विध्वंश के रूप में हमारे सामने आया। वहीं तीसरी तरफ पूरे देश में 'मंडल कमीशन' के पक्ष और विपक्ष में आन्दोलन चल रहा था। ऐसे समय में ओमप्रकाश वाल्मीकि हिंदी साहित्य में गौतम बुद्ध और डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा को लेकर आते हैं। उन्होंने गौतम बुद्ध के जीवन-दर्शन और डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा के आधार पर हिंदी साहित्य में एक नई अस्मितावादी धारा की नींव रखी, जिसे दलित साहित्य का नाम दिया गया। दलित साहित्य को व्याख्यीत करते हुए जयप्रकाश कर्दम कहते हैं –"दलित साहित्य वह खिड़की है, जहाँ से भारतीय जीवन की कुरूपता और वीभत्सता स्पष्ट दिखाई देती है।"[75] तो यह कहना ग़लत नहीं होगा कि हिंदी साहित्य जगत में उस 'खिड़की' को खोलने वाले ओमप्रकाश वाल्मीकि हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि का साहित्य मुख्यधारा की जड़ता और बर्बर लोगों की संवेदनशून्यता को तोड़कर उसमें संवेदनशीलता उत्पन्न करने की हिमाकत रखती है। उन्होंने साहित्य की जड़ता के कारण परंपरागत वर्णवादी साहित्य में जो वर्ग-विशेष का आधिपत्य था उसे तोड़ते हुए, उसके स्थान दलित-पीड़ित-शोषित लोगों को साहित्य के केन्द्र में लाकर प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया। अपनी विखंडनात्मक दृष्टि से साहित्य का अध्ययन करके सवर्णवादी आलोचकों द्वारा की गई आलोचना में छिपी हुई जातिवादी मानसिकता प्रकट करना शुरु किया तो परम्परागत साहित्य के पक्षधर उनके साहित्य और साथ ही संपूर्ण दलित साहित्य का विरोध करने लगा। ऐसे विरोध और आक्षेप के वातावरण के बीच भी ओमप्रकाश वाल्मीकि निरंतर दलित साहित्य सर्जन करते ही रहें। दलित लेखक और आलोचक भालन्द्र जोशी ने ओमप्रकाश वाल्मीकि को अन्य दलित साहित्यकारों से अनूठे सिद्ध करने वाली उनकी इस विशेषता के संदर्भ में लिखा हैं -"दलित ही दलित साहित्य की रचना कर सकता है। यह बहस हालांकि अब पुरानी पड़ चुकी है लेकिन इस बात का जवाब जिन थोड़े से दलित

लेखकों ने बहुत धैर्य और दृढ़ता के साथ अपनी रचनात्मकता से दिया है, उनमें ओमप्रकाश वाल्मीकि प्रमुख नाम है। तमाम वाद-विवाद और बहस या आरोप का जवाब रचना से बेहतर नहीं होता है। वाल्मीकि के पास उनकी रचना ही प्रतिवाद है। रचना ही प्रत्युतर है।''[76]

ओमप्रकाश वाल्मीकि बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। उनकी बहुज्ञता उनके लेखन में लक्षित होता है। उन्होंने अपनी कलम हर विद्या में चलाई हैं। वे एक कवि, कथाकार, आलोचक और नाटककार होने के साथ-साथ दलित आन्दोलन के एक प्रमुख एक्टिविस्ट भी थे। हिंदी दलित साहित्य के वे आधार स्तम्भ हैं। उनके लेखन से हिंदी दलित साहित्य को एक ठोस आधार और एक सशक्त पहचान मिली। उन्होंने अपने लेखन के माध्यम से दलित विमर्श, दलित साहित्य, दलित चेतना और दलित आन्दोन को एक नया आयाम दिया। उनके लेखन का फलक काफी विस्तृत और गहरा है। इस दृष्टि से देखें तो ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित साहित्य, दलित विमर्श, दलित चेतना और दलित आन्दोलन के एक महत्त्वपूर्ण और अनिवार्य हस्ताक्षर हैं। प्रसिद्ध हिंदी पत्रिका 'इंडिया टुडे' के सन् 2002 ई. के साहित्य वार्षिकी अंक में ओमप्रकाश वाल्मीकि के गरिमामय स्थान को प्रकाशित करते हुए लिखा गया है -"दलित साहित्य का आन्दोलन केवल हिंदी तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक अखिल भारतीय आन्दोलन है और इस अखिल भारतीय आन्दोलन में सक्रिय एवं महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने में ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का विशेष रूप में अग्रणी स्थान है।''[77] उनका यह अग्रणी स्थान साहित्य-सर्जन का परिचय देता है। यह उनके गहरी साहित्यिक और सामाजिक समझ का परिणाम है। प्रो. चमनलाल अपनी किताब 'दलित साहित्यः एक मूल्याकंन' में सभी हिंदी दलित साहित्यकारों के साहित्य का मूल्याकंन करने के बाद वाल्मीकि जी को उनके साहित्य की गुणवत्ता के कारण सर्वोच्च स्थान दिया है। वे लिखते हैं -"हिंदी में दलित साहित्य आज इतनी मात्रा में लिखा जा रहा है कि उसके कुछ अंशों में निश्चिय ही साहित्यिक कलात्मकता का स्तर काफी ऊँचा है। जो दलित लेखक अपने लेखन के द्वारा साहित्यिक गुणवत्ता की कसौटी पर भी खरे उतरे हैं, उनमें ओमप्रकाश वाल्मीकि का स्थान सर्वोपरि है।''[78]

ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' ने साहित्य जगत में जिस वातावरण का निर्माण किया है, वह अद्भुत है। हिंदी दलित विमर्शगत साहित्यिक आन्दोलन को और अधिक उद्वेलित करने में 'जूठन' ने प्रभावक भूमिका अदा की है। यह सच है कि वाल्मीकि जी ने यथार्थपरक दलित जीवन-चित्रण एवं दलित जागृति और दलित चेतना को प्रस्तुत करने की शुरुआत अपनी कविताओं और कहानियों के माध्यम से किया लेकिन हिंदी पाठकों को झकझोरने और उनके अंदर चेतना को जगाने में सबसे अधिक सफलता उनको 'जूठन' से हासिल हुई। उन्होंने दलित जीवन की विद्रुपताओं को

जिस साहस और लेखकीय प्रतिबद्धता के साथ अपनी आत्मकथा में प्रस्तुत किया है, वह भारतीय साहित्य में अनोखा प्रयोग है। 'जूठन' ने सबसे पहले पारम्परिक साहित्यिक अवधारणाओं के अंतर्गत जो आत्मकथा की परिभाषा थी, उसे ही बदलकर रख दिया। उन्होंने 'जूठन' के माध्यम से पारम्परिक आत्मकथा के मापदंड़ों का विखंडन किया और नई अवधारणाएं एवं मापदंड निर्मित किए। 'जूठन' पारम्परिक आत्मकथाओं से एकदम भिन्न है। इसमें वाल्मीकि जी ने अपने भोगे हुए जीवन को यथार्थ की भूमि पर प्रस्तुत किया है। यह यथार्थ मात्र उनका नहीं बल्कि संपूर्ण दलित समाज का यथार्थ है। वाल्मीकि जी ने दलित जीवन की विदुरूपताओं को जिस साहस और लेखकीय प्रतिबद्धता के साथ प्रस्तुत किया है, वह भारतीय साहित्य में अनोखा प्रयोग है। वाल्मीकि जी ने अपनी आत्मकथा में ऐसी-ऐसी अमावनीय सच्चाइयों को अभिव्यक्त किया है, जिनसे सवर्ण साहित्यकारों की कलम आजतक अछूती रही थी। भूख, गरीबी आदि की समस्याएँ तो हमें मुख्यधारा के आत्मकथाकारों की आत्मकथाओं में भी देखने को मिलती है लेकिन जातिगत भेदभाव, उत्पीड़न, अपमान, शोषण, अत्याचार आदि को मुख्यधारा के साहित्यकारों ने अनदेखा किया। इन सारी समस्याओं को दिखाने का काम ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी आत्मकथा में किया है। वाल्मीकि जी ने अपनी आत्मकथा के माध्यम से केवल साहित्यिकता पर ही नहीं, भारतीय संस्कृति की महानता पर भी प्रश्नचिन्ह लगाया है और हिंदी साहित्य की महानता को कटघरे में खड़ा किया है। 'जूठन' पर टिप्पणी करते हुए श्यौराजसिंह बेचैन लिखते हैं -"जिस जूठन के इर्द-गिर्द ओमप्रकाश वाल्मीकि की जीवन-कथा घूमती है, वह जूठन इस बात का प्रतीक है, यह सबूत है कि स्वतंत्रता के बाद भी सामाजिक रूप में गुलाम लोगों को शुद्ध भोजन प्राप्त करने की परिस्थितियाँ भी पैदा नहीं होने दी जाती है। जीविका के तमाम साधनों से वंचित रखे गए लोगों से वे सब काम लिए जाते हैं, जिनके स्मरण से ही अभिजात्य को घृणा होती है, वह भी कार्य से कम व्यक्ति से ज्यादा।"[79] 'जूठन' के माध्यम से दलित समाज में एक क्रांतिकारी बदलाव आया है। इससे दलित वर्गों में चेतना जगी है और यही 'जूठन' की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

भारतीय दलित साहित्य के सम्मुख दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र का प्रश्न आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' पुस्तक लिखकर कई हद तक इस प्रश्न का उत्तर देने की और ढूंढ़ने की कोशिश किए हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी आलोचना दृष्टि से पारम्परिक सौन्दर्यशास्त्र को सिरे से खारिज करते हैं और दलित साहित्य के लिए एक अलग सौन्दर्यशास्त्र की परिकल्पना करते हैं। उनका मानना है कि सदियों से चला आ रहा हिंदी साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र दलित विरोधी है। यह सौन्दर्यशास्त्र समानता, बंधुत्व और स्वतंत्रता आदि के

अनिवार्य अंतर्संबंधों की भावना को खंडित करने वाला है। इसने शताब्दियों से दलितों के भीतर हीनता भाव को पुख्ता करने का काम किया है। पारम्परिक सौन्दर्यशास्त्र दलित साहित्य का मूल्यांकन करने में अक्षम है। अतः ऐसे सौन्दर्यशास्त्र को जड़ से नकारना होगा और ऐसा सौन्दर्यशास्त्र गढ़ना होगा जो मानव हितैषी हो। जिसके अंदर समाज को बांधने की भावना हो और जो सबको साथ लेकर चलता हो। लेकिन दलित साहित्य के लिए सौन्दर्यशास्त्र का यह प्राथमिक स्वरूप मात्र है और दलित साहित्यकारों को यह बात स्वीकारनी होगी। दलित लेखकों और आलोचकों को दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र के प्रश्न पर विचार विमर्श करने की आवश्यकता है और इसे विस्तृत रूप देने की जरूरत है।

इस तरह 'दलित आन्दोलन और ओमप्रकाश वाल्मीकि' का एक दूसरे से पूरक संबंध रहा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने दलित आन्दोलन को एक नयी दिशा दी हैं, एक नयी ऊँचाई में पहुंचाया हैं। वाल्मीकि जी किसी समाज या किसी समुदाय की बात नहीं करते बल्कि वह सम्पूर्ण मनुष्य की स्वतंत्रता की बात करते हैं। वह अपनी लेखनी के माध्यम से समाज में परिवर्तन लाना चाहते हैं। समरसता का बीज बोना चाहते हैं। उनका मुख्य उद्देश्य मानवता की स्थापना करना है। वाल्मीकि जी प्रगतिशील विचार रखने वाले लेखक हैं। इसलिए वाल्मीकि जी को किसी सीमा के अंतर्गत रखना या उनको मात्र दलित साहित्यकार के रूप में देखना उनके साथ अन्याय होगा। वास्तव में वह मानवता के फलक को विस्तार देने वाले रचनाकार हैं।

संदर्भ-सूची:-

1. वर्मा, धीरेन्द्र, हिंदी साहित्य कोश, भाग-1, पारिभाषिक शब्दावली, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, पृ.243
2. दास, श्यामसुंदर, हिंदी शब्द सागर, प्रथम भाग, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. 2229
3. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला छात्र संस्करण, पृ. 13
4. युद्धरत आम आदमी (अंक 41-42), सं. रमणिका गुप्ता, 1998,
5. मेघवाल, डॉ. कुसुमलता, हिंदी उपन्यासों में दलित वर्ग, प्रकाशन-कल्चरल, लखनऊ, प्रथम संस्करण, 1996, पृ. 1
6. युद्धरत आम आदमी (अंक 41-42), सं. रमणिका गुप्ता, 1998, पृ. 41
7. पाण्डेय, डॉ. मैनेजर, राख ही जानती है जलने का अनुभव (साक्षात्कार), दलित चेतना, सं. रमणिका गुप्ता, पृ. 3
8. नया पथ (अंक 24-25), जुलाई-सितंबर, 1997, पृ. 104-105
9. सिंह, डॉ. एन, दलित साहित्य का प्रतिमान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ. 68
10. चंद्र, डॉ. सुभाष, दलित मुक्ति आन्दोलन: सीमाएं और संभावनाएं, आधार प्रकाशन, हरियाणा, प्र. सं. 2010, पृ. 15
11. कुमार, अजय, दलित पैंथर आन्दोलन, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, 2006, पृ. 86
12. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली,2014, पृ. 14
13. वही, पृ. 15
14. युद्धरत आम आदमी (अंक 41-42), सं. रमणिका गुप्ता, 1998, पृ. 41
15. चमनलाल, प्रो. दलित साहित्य: एक मूल्यांकन, राजपाल प्रकाशन, नई दिल्ली,2017, पृ. 15
16. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली,2014, पृ. 15
17. दलित साहित्य, सं. जयप्रकाश कर्दम, 1999, पृ. 39
18. हिंदी साहित्य का बासीपन दूर कर रहा है दलित साहित्य (साक्षात्कार): डॉ.. एन. सिंह, सुमनलिपि (मासिक), बंबई, अक्टूबर-नवंबर, 1993, पृ. 35
19. उद्धृत, सिंह, डॉ. एन, दलित साहित्य का प्रतिमान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ. 70
20. दलित साहित्य: एक परिचय (लेख), प्रेम कुमार मणि, वर्तमान साहित्य, मासिक, गाजियाबाद, जनवरी 1993, पृ. 48
21. दलित संघर्ष, संस्कृति और साहित्य की सबल अभिव्यक्ति (लेख), डॉ.. पेमशंकर, प्रशासक, त्रैयमासिक, मसूरी, जनवरी-मार्च 1997, वाल्यूम-11, पृ. 212-213
22. भारती, डॉ. सी. बी, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, अंक 41-42, 1998, पृ. 41
23. दलित साहित्य: क्रांति और विद्रोह का शाश्वत साहित्य (लेख), डॉ.. सोहनपाल सुमनाक्षर, शिखर की ओर, सं. डॉ. एन. सिंह, पृ. 301

24. दिनकर, रामधारी, संस्कृत के चार अध्याय, तीसरा संस्कारण, लोकभरती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010, पृ. 324
25. प्रचीन भारत (लेख), रोमिला थापर, संस्करण, 2001, पृ. 35
26. सिंह, डॉ. एन, दलित साहित्य का प्रतिमान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ. 82
27. दलित संघर्ष, संस्कृति और साहित्य की सबल अभिव्यक्ति (लेख), डॉ. पेमशंकर, प्रशासक, त्रैमासिक, मसूरी, जनवरी-मार्च 1997, वाल्यूम-11, पृ. 206
28. सिंह, डॉ. एन, दलित साहित्य का प्रतिमान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 83
29. तिवारी, बजरंग बिहारी, दलित साहित्य: एक अंतर्यात्रा, नवारुण, गाजियाबाद, 2015, पृ. 16
30. दलित संघर्ष: संस्कृति एवं साहित्य की सबल अभिव्यक्ति (लेख), डॉ. प्रेमशंकर, प्रशासक, त्रैमासिक, मसूरी, जनवरी-मार्च -1997, वाल्यूम-11,पृ. 206
31.माताप्रसाद, हिंदी काव्य में दलित काव्य धारा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 47
32. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, कबीर, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, छब्बीसवाँ संस्कारण, 2019, पृ॰ 87.
33. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, संस्करण: 2009, पृ. 77
34. चतुर्वेदी, परसुराम, दादूदयाल ग्रंथावली, संवत् 2033, पृ. 271
35. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, संस्करण: 2009, पृ. 78
36. दलित साहित्य के अग्रदूत, गुरु रविदास, डॉ.. चमन लाल, आधार प्रकाशन, पंचकूला, संस्करण, 1998, पृ. 7-8
37.
38. कर्दम, जयप्रकाश, दलित साहित्य वार्षिकी, 2000, पृ. 1
39. अपेक्षा, अप्रेल-जून 2003, भूमिका।
40. दलित साहित्य की प्रेरणा केवल अंबेडकर (लेख), डॉ. गंगाधर पानतावडे, युद्ध रत आम आदमी, अक्टूबर-दिसंबर 1996, पृ. 26
41. टाकभौरे, सुशीला, हमारे हिस्से का सूरज, नागपुर, 2004, पृ. 43
42. कुबेर, डब्ल्यू. एन, डॉ. अंबेडकर, (अनुवार-सीमा राम खोडावाल), पृ. 123
43. Ambedker, B.R, Annihilation of caste, p. 47
44. लोक संस्कृति में दलित (लेख), कंवल भारती, सं. दीपक कुमार और देवेन्द्र चैबे, आधार प्रकाशन, पृ. 279
45. हरिजन से दलित (लेख), डॉ. धर्मवीर, सं. राजकिशोर, पृ. 146
46. अंबेडकर, डॉ. बाबा साहेब, संपूर्ण वांगमय (खंड-7), समाज कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, 1995, पृ. 47
47. दलित मुक्ति आन्दोलन की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति: मराठी कविता (लेख), डॉ. विमल थोरात, दलित चेतना साहित्य, सं. रमणिका गुप्ता, पृ. 121

48. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, दलित साहित्य: अनुभव, संघर्ष और यथार्थ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 87
49. दलित संघर्ष के महानायक, एम. पी. कलम, स्नेह साहित्य सदन, प्रथम संस्करण, 2003, नई दिल्ली, पृ. 27
50. युद्धरत आम आदमी, सं. रमणिका गुप्ता, जुलाई-सितंबर, 1995, पृ. 31
51. हंस, अगस्त, 2004, पृ. 92
52. युद्धरत आम आदमी, अक्टूबर-दिसंबर, 2001, पृ. 33
53. वही, पृ. 37
54. तिवारी, बजरंग बिहारी, दलित साहित्य: एक अन्तर्यात्रा, नवारुण, गाजियाबाद, 2015, पृ. 20
55. हिंदुस्तान दैनिक अखबार, 12/10/2006
56. दुबे, अभय कुमार, आधुनिकता के आइने में दलित, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2005, पृ. 421
57.दलित आन्दोलन और धर्मान्तरण: दिशा और दृष्टिकोण (लेख), प्रकाश लुईस, सं. मणिमाला, बुक्स फॉर चेन्ज, नई दिल्ली, 2003, पृ. 10
58. दैनिक जागरण (दैनिक पत्र), 25 अगस्त, 2016
59. धर्मान्तरण: आज के परिप्रेक्ष्य में (लेख), कंवल भारती, सं. मणिमाला, बुक्स फॉर चेन्ज, दिल्ली, 2003, पृ. 62
60. वही, पृ. 62
61. चंद्र, डॉ. सुभाष, दलित मुक्ति आन्दोलन: सीमाएं और संभावनाएं, आधार प्रकाशन, हरियाणा, प्रथम संस्करण 2010, पृ. 121
62. वही, पृ. 114
63. अपेक्षा, सं. जेतसिंह, जुलाई-दिसंबर, 2004, पृ. 14
64. ऋगवेद, दसवाँ मंडल, पुरुष सूक्त, 12वाँ मंत्र
65. तिवारी, बजरंग बिहारी, दलित साहित्य: एक अंतर्यात्रा, नवारुण प्रकाशन, गाजियाबाद, 2015, पृ. 15
66. सचेतना, सं. जयप्रकाश कर्दम, अंक-1, मार्च 1981, , पृ. 30
67. गुप्ता, रमणिका, दलित चेतना: कविता, नवलेख प्रकाशन, हजारीबाग, 1996, पृ. 1
68. समकालीन भारतीय साहित्य, त्रैमासिक, दिल्ली, जुलाई-सितंबर -1994, पृ. 159
69. हंस, अक्टूबर, 1992, पृ.
70. भारती, कंवल, दलित चेतना के प्रथम कवि हीरा डोम या अछूतानंद (लेख), हम दलित, जुलाई, 1997
71. कथा क्रम, सं. शैलेन्द्र सागर, जनवरी-मार्च, 2014, पृ. 25
72. हंस, अक्टूबर-1992,पृ. 73
73. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, दलित सहित्य: अनुभव, संघर्ष और यथार्थ, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, पृ. 137
74. मेघवाल, कुसुम, हिंदी उपन्यासों में दलित वर्ग, संधी प्रकाशन, जयपुर, 1985, पृ. 53

75. कर्दम, जयप्रकाश, ओमप्रकाश वाल्मीकि: व्यक्ति, विचारक और सृजक, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2013, भूमिका।
76. 'अरुष', सिंह, हरपाल, ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में सामाजिक लोकतांत्रिक चेतना, जवारह पुस्तकालय, उ.प्र, 2014, पृ.49
77. इंडिया टुडे, साहित्य वार्षिकी, 2002, पृ. 14
78. चमनलाल, प्रो०, दलित साहित्य: एक मूल्याकंन, राजपाल एंड संस, 2017, पृ. 46
79. मिश्र, शिवबाबू, जूठन: एक विमर्श, शब्दसृष्टि प्रकाशन, दिल्ली, 2006, पृ. 47.